४

मध्यकाल की चित्रकला

(पोथियों की चित्रकला)
(७०० ई० से १६०० ईसवी तक)

भारतवर्ष में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से ही भित्तिचित्र कला का एक संस्थान स्थापित होने लगा था। इस कला-शैली में उत्तरोत्तर उच्चकोटि के शिल्प की वृद्धि होती गई, परन्तु कुछ शताब्दियों के पश्चात् इसकी प्रगति मंद पड़ने लगी। आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में इस शैली की विशेषताएँ अधःपतन का रूप धारण करने लगीं और इस कला-शैली के उत्थान विकास की जो आशा की जाती थी वह अपूर्ण रह गई। सातवीं शताब्दी से बौद्ध धर्म में ह्रास और पतन के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे, जिनका प्रभाव देश की कला तथा साहित्यिक रचनाओं पर भी पड़ा। लगभग एक हजार वर्ष तक विदेशी यवन आक्रान्ताओं ने देश में अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न कर सुखद वातावरण को नष्ट कर दिया जिससे भारतीय लोगों को कला विकास का उचित अवसर ही नहीं मिल सका। दूसरी ओर हिन्दू धर्म पुनः शक्ति को प्राप्त होने लगा था। इन सब कारणों से कला-विकास की स्वच्छन्द धारा अवरुद्ध होने लगी। लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् ही पुनः कलाकृतियों के उत्तम उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस एक हज़ार वर्ष की मध्यकालीन अवधि की कला के उदाहरण बहुत कम उपलब्ध हैं और इनकी कला-शैली बहुत निम्नकोटि की है।

भारत में मध्यकाल की लगभग एक हज़ार वर्ष की अवधि के अन्तराल में चित्रकला की प्रगति शिथिल होने के अनेक कारण हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि चित्रकला को छोड़कर अन्य कलाएँ विकसित हुयीं जबकि चित्रकला नितान्त शिथिल पड़ गई। आठवीं तथा नवीं शताब्दी से हमारे देश पर मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण होने लगे थे और स्थानीय राजनैतिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से सैन्य-संगठन और सुरक्षा की समस्याओं के समाधान में उलझी रहीं। नवनिर्मित राज्यों के रूप बदलते जा रहे थे, शासक, प्रशासक और संविधान उलटते जा रहे थे, देश की

दशा अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो गई थी। ऐसी अवस्था में किसी भी महान कलाकृति का निर्माण असम्भव था। दूसरी ओर सातवीं शताब्दी से ही धार्मिक क्षेत्र में एक नवीन क्रांति और परिवर्तन की लहर दौड़ रही थी। हिन्दू भागवत् धर्म पुनः समाज में सबल हो रहा था। हिन्दू धर्म का नवीन और परिमार्जित रूप जनता में अति लोकप्रिय होता जा रहा था, इसके साथ ही बलपूर्वक बर्बरता से इस्लाम का प्रचार तथा प्रसार आरंभ हो रहा था। इस कारण मध्यकालीन राजनैतिक और धार्मिक समस्याओं पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि कलाकारों की शक्तियाँ राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी अवश्य लग गई होंगी।

यदि यह मान लिया जाय कि अजन्ता के भिक्षु कलाकार, जिन्होंने सातवीं शताब्दी तक सुंदर चित्र बनाये और जिनकी कला-शैली प्रचलित परम्परा बन गई थी, समाप्त हो गए होंगे संभव नहीं, क्योंकि यह शैली धार्मिक प्रतिक्रिया के पश्चात् भी परम्परा के रूप में प्रचलित रही। बौद्ध धर्म का स्थान हिन्दू धर्म ने ग्रहण किया। यह नवीन हिन्दू धर्म कला के अन्य क्षेत्रों जैसे भवन, मूर्ति तथा वास्तुकला के क्षेत्रों में बौद्ध धर्म से अधिक कलापूर्ण था। उदाहरणार्थ भवन तथा मूर्तिकला की हिन्दू काल में विशेष उन्नति हुई। इस समय के भव्य मंदिर तथा उच्चकोटि के शिल्प से युक्त मूर्तियाँ कला-उन्नति की साक्षी हैं। दृश्य-कलाओं के क्षेत्र में आठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी के बीच का समय भारतीय कला सिद्धान्तों और आदर्शों के चिन्तन और मनन का काल था। इस समय हिन्दू धर्म कलाकृतियों और कलाकारों को प्रतिष्ठित और नियंत्रित करने वाली एकमात्र शक्ति था। हिन्दू धर्म में चित्र के स्थान पर मूर्ति का विशेष महत्व था। मूर्ति के लिये मंदिर की आवश्यकता थी इसी कारण चित्र का स्थान मूर्ति, भवन तथा वास्तु ने लिया। ये ही कारण है कि इस समय में चित्रकला की उन्नति न होते हुए भी अन्य कलाओं का विकास हुआ। एलीफेन्टा, एलोरा तथा बोरोबुदुर की मूर्तिकला में हिन्दू कला के उत्तम उदाहरण सुरक्षित हैं, शिल्पियों ने विशालकाय मूर्तियाँ तथा प्रस्तर-तक्षण के नमूने प्रस्तुत किये। इन भव्य उदाहरणों के चिन्ह आज बहुत कम प्राप्त हैं क्योंकि उत्तर भारत में गुप्त-शासकों के बाद उनके साम्राज्य की सीमा पर ही मुसलमानों के साम्राज्य स्थापित होने लगे और उन्होंने इस भाग के हिन्दू भवनों तथा मंदिरों आदि को नष्ट कर दिया। इस समय की चित्रकला के उदाहरण बहुत कम प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकला का पूर्व विकसित माध्यम पुनः हिन्दू धर्म के जागरण से मूर्ति के रूप में प्रस्फुटित हो पड़ा।

इस समय की चित्रकला के उदाहरण न प्राप्त होने का एक कारण यवन विध्वंसों के अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि भारतवर्ष की विनाशकारी जलवायु ने इस समय की कलाकृतियों से सुसज्जित भवनों को नष्ट कर दिया हो। यदि यह सोचा जाय कि हिन्दू धर्म के अनुयायियों ने इन चित्रों को नष्ट किया, तो व्यर्थ है, क्योंकि धर्म की सहिष्णुता के कारण यह सोचना संगत नहीं कि हिन्दू धर्म में किसी धर्म की शिक्षा, उपदेश, कला या साहित्य के प्रति कोई प्रतिक्रिया का भाव या विद्रोह था। अतः यही निश्चित है कि

यवनों के द्वारा कराये गए भवनों के विध्वंसों तथा अग्निकांडों से कलाकृतियों को भारी क्षति पहुँची। मुसलमानों ने भवनों तथा मूर्तियों के साथ ही इस समय के चित्रपटों, चित्रित पोथियों अथवा चित्रफलकों या भित्तिचित्रों को भी नष्ट कर दिया। इतिहास में मुसलमानों की ऐसी अभद्रता के अनेक प्रमाण उपलब्ध है। एक बात और भी है कि सभी कलाओं में सामान्यतः प्रगति समान स्तर पर नहीं होती क्योंकि बौद्ध धर्म के साथ अजन्ता में भित्ति-चित्रण की कला का उच्चतम विकास हुआ जबकि उसकी सहकला मूर्तिकला एक सौ वर्ष तक पूर्णतः को प्राप्त नहीं हुई। इन दोनों कलाओं का प्रत्येक देश में घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वैसे चित्रकला मूर्तिकला की अपेक्षा अधिक सरल है और प्रत्येक देश में प्रायः चित्रकला के पश्चात ही मूर्तिकला का विकास होता दिखाई पड़ता है। मध्यकाल में भित्तिचित्रण की कला समाप्त होने लगी और जो चित्र बनाये गए वे अधिकांश लघु पोथीचित्र या पटचित्र है। सम्भवतः मुसलमान विजेताओं या आक्रान्ताओं के द्वारा भित्तिचित्र नष्ट कराये जाने के डर से चित्र ऐसे लघु रूप में बनाये जाने लगे जो आपत्तिकाल में सुविधा से सुरक्षा हेतु साथ में ले जाये जा सकें और विनाश से बच सकें। इसी कारण अनुमानतः पटचित्र या तालपत्रों पर बने चित्र इस समय में प्रचलित हुए जो भित्तिचित्रों की तुलना में अधिक स्थायी न थे।

वृहत्तर भारत की चित्रकला—मध्यकालीन भारत की चित्रकला का अनुमान लगाने के लिए वृहत्तर भारत की चित्रकला का अध्ययन अधिक लाभकारी होगा, क्योंकि इस प्रकार के कला उदाहरणों से तत्कालीन भारतीय चित्रकला का अनुमान लगाया जा सकता है। बौद्ध धर्म प्रचारकों तथा भिक्षुओं को अपने धार्मिक उपदेशों तथा सिद्धान्तों के प्रचार हेतु चित्रकला का उत्तम साधन मिला। अतः जब वे दूसरे देशों में धर्म-प्रचारार्थ गये तो अपने साथ चित्रपट भी लेते गये। इन पटचित्रों पर भगवान तथागत के उपदेश तथा उनकी जीवन कथाएँ चित्रित रहती थी। जनसाधारण को प्रभावित करने में तथा धर्म-प्रचार में इन कलाकृतियों का विशेष स्थान था। भारत के समीपवर्ती देशों जैसे खुतन, तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन, लंका, स्याम, कम्बोडिया, बर्मा, नेपाल, अफगानिस्तान, कोरिया तथा जापान में बौद्ध धर्म तथा दर्शन के प्रचार के साथ भारतीय कला इन देशों में पहुँची। बौद्ध-कला तथा धर्म के अत्यधिक प्रसार का कारण यह भी था कि जिन देशों की संस्कृति या विचारधारा को अपने बौद्ध आचार्यों ने उच्च आदर्श दिये वहीं उन्होंने उन देशों की संस्कृति तथा विचारधारा से कुछ अपनाया भी। इसी कारण इन देशों की भवन, मूर्ति, वास्तु या चित्रकला का भी भारतीय कला से सन्निकट सम्बन्ध प्रतीत होता है।

'पगान' के प्राचीन मंदिरों में जातक कथाओं के चित्र प्राप्त हुए है और 'बरमा' के मंदिर में तंत्र-मंत्र पर आधारित अनेक तांत्रिक चित्र भी मिले है। बरमा के चित्रों में शक्तिशाली तीव्र रेखाएँ तथा अस्वाभाविक पाल शैली के ढंग की भंगिमाएँ है। श्रीलंका की सिगिरिया गुफा तथा अनुराधपुर के चित्रों पर भारतीय कला का स्पष्ट प्रभाव है।

'मीरान' के भवन अवशेषों में पश्चिम एशिया निवासी रोमन चित्रकार 'तित' के द्वारा बनाई अनेक कृतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिसमें 'वेस्सान्तर जातक' (चित्र पर अंकित लिपि के आधार पर समय चौथी शताब्दी) चित्र उल्लेखनीय है। इस चित्र पर गान्धार शैली का प्रभाव है। 'दंदाउइलीक' से प्राप्त भित्तिचित्रों और चित्रपटों के अवशेष सातवीं तथा आठवीं शताब्दी के हैं। इन चित्रों की शैली भारतीय-चीनी प्रभाव से युक्त है। 'दंदाउइलीक' में प्राप्त एक स्त्री आकृति का एक महत्त्वपूर्ण चित्र है। इसके चेहरे, हाथों और आभूषणों आदि की लिखाई में भारतीयता है। इस आकृति के साथ एक बालक है और पृष्ठभूमि में बुद्ध तथा बौद्ध स्थविर अंकित किये गए हैं।

'कूचा क्षेत्र' में अनेक गुफाओं में भारतीय शैली की चित्रकारी प्राप्त होती है। यहाँ पर गुफाओं में ब्रह्मा तथा इन्द्र, शिव तथा पार्वती को नन्दी के साथ अंकित किया गया है। एक स्थान पर राजपूत या राजस्थानी कला जैसा विषय लिया गया है और बादलों से वर्षा की बूंद ग्रहण करता चातक अंकित किया गया है। यहाँ पर भित्तिचित्र, काष्ठफलक चित्र, पटचित्र आदि प्राप्त हुए हैं। जिन पर भारतीय-ईरानी शैली का प्रभाव है।

कलिंग या तेलंगाना की मोन जाति मौलमीन से उत्तर में 'थाटन' नामक क्षेत्र में जाकर बस गई थी। यह जाति बौद्ध धर्म की अनुयायी थी। पाँचवीं ईसवी शताब्दी के पश्चात तिब्बत की 'प्यू' जाति भी 'मध्य बरमा' में पहुँची। इस जाति के लोगों ने भी मठों का निर्माण कराया जिन पर चाँदी तथा सोने की पच्चीकारी उत्तम है। उस समय के पात्रों पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय वहाँ कोई विक्रमवंशीय भारतीय राजा राज्य करता था।

'प्रोम' नामक प्राचीन स्थान के उत्खनन के पश्चात् पाँचवीं तथा छठी शताब्दी की कलाकृतियों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इन उदाहरणों में बुद्ध की एक प्रतिमा तथा सोने-चाँदी की अनेक पिटारियाँ उपलब्ध हुईं। जिन पर संस्कृत भाषा के लेख अंकित हैं:

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य बरमियों ने बरमा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और राजा अनोराता ने 'पगान' में अपनी राजधानी स्थापित कर ली। इस शासक ने बौद्ध मठों के निर्माण का कार्य आरंभ कराया। पगान के एक प्राचीन मंदिर में आज भी विष्णु-प्रतिमा प्रतिष्ठित है। पगान के अधिकांश भवन बौद्ध शैली के हैं। यहाँ पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि धर्म प्रचार के लिये पाँच सहस्र स्तूपों का निर्माण किया गया परन्तु इनके अवशेष मात्र ही आज प्राप्त हैं। यहाँ का श्वेत आनंद मंदिर अनोराता के पुत्र चियानसात ने ग्यारहवीं शताब्दी में बनवाया था। चियानसात की माता भारतीय थी। उसने बिहार के बौद्धगया मंदिर का पुनरुद्धार कराया था। श्याम के अन्तर्गत बैंकाक में एक ३८० फुट ऊँचा विशाल स्तूप है जो उत्तरी भारत के स्तूपों के समान है। उत्तरी श्याम के लेम्पुन नामक स्थान में प्राप्त पाँच मंजिला मंदिर है। यहाँ पर स्तूप के दोनों ओर बुद्ध की खड़ी मुद्रा में सात मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

चीन में भारतीय-कला के प्रभाव की पहली लहर तिब्बत तथा नेपाल होती हुई पहुँची। दूसरी ओर खोतन तथा तुर्किस्तान में प्राप्त कला उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में हेलेनिस्टिक, भारतीय, ईरानी तथा चीनी संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता था। अतः चीन में दूसरा भारतीय प्रभाव इस ओर से पहुँचा। तत्कालीन उन्नत संस्कृतियाँ इस क्षेत्र पर अपना प्रभाव इस कारण भी जमा रही थीं कि यह क्षेत्र ग्रीक, फारसी, ईरानी, चीनी तथा भारतीय व्यापारियों के काफिलों के आने-जाने का प्रधान मार्ग और व्यापार केन्द्र था। इन काफिलों के साथ एशिया में दूर-दूर तक पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक भारतीय धर्म प्रचारक गये। तुन्हिल (पेकिंग) के एक विहार में पाँच सौ अर्हतों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। जिनमें बुद्ध के अनेकों रूपों-अवलोकितेश्वर, मंजुश्री आदि रूपों की सुंदर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। चीनी सम्राट यांगती (६०५-६१७ ई०) के राजदरबार में खुत्तान के एक चित्रकार तथा उसके चित्रकार पुत्र को राजाश्रय प्राप्त था। ये दोनों भारतीय शैली के चित्र बनाते थे। कोरिया तथा चीन में इन्हीं चित्रकारों ने बौद्धकला का प्रसार किया।

जापान के 'होरयूजी मंदिर' की दीवारों पर अजन्ता शैली की चित्रकारी आज भी सुरक्षित है। सेरयुजी मंदिर में प्राप्त बुद्ध प्रतिमाओं पर गांधार शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है। 'अंकोर' का संसार प्रसिद्ध मंदिर बौद्ध शिल्प की दृष्टि से एक उत्तम कलाकृति है। 'चम्पा' में राजा चन्द्र वर्मा (हिन्दू) तथा 'कम्बोज' (कम्बोडिया) में अनेक शासकों ने वैष्णव तथा शैव मंदिर बनवाये। कम्बोज में अधिकांश बड़े-बड़े शैव तथा वैष्णव मंदिर दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक बनाये गए। इन मंदिरों में 'प्रस्तर शिलों' पर रामायण की कथाओं को काटकर उभारा गया है। इसी प्रकार 'बोरुबुदुर' (जावा) के मंदिरों की भित्तियों पर रामायण के चित्र प्राप्त हैं। मलाया तथा जावा में बौद्ध शैली की अनेक कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं। 'मलाया' में नालंदा शैली के आधार पर बुद्ध की धातु-मूर्तियों का निर्माण किया गया। इसी प्रकार यहाँ पर भारतीय पल्लव शैली की विष्णु-मूर्तियाँ बनायी गई। जावा में आठवीं शताब्दी के मध्य शैलेन्द्र वंश के शासकों ने बोरुबुदुर का महास्तूप बनवाया और बुद्ध की १२० प्रतिमाएँ बनवायी गई। इसके अतिरिक्त चारों ओर की वीथिकाओं को अलंकृत करने के लिए १३०० मूर्तियाँ बनायी गई।

१९०३ ई० में दो विद्वानों डॉ० औरलस्टीन तथा लेकाक ने मध्य एशिया से भारतीय कला के उदाहरण उपलब्ध किये और उन्होंने ईरान, दनदन-अहिलिक आदि क्षेत्रों में जो कला सामग्री प्राप्त की उससे भारतीय कलाओं का महत्व बढ़ा। १९०३ ईसवी में उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश और बलूचिस्तान में पुरातत्व की खोज के लिए डॉ० स्टीन को निमंत्रित किया गया था। इस समय उन्होंने अफगानिस्तान से बामियाँ की भग्न अवशेष गुफाओं से चौथी शताब्दी के भारतीय शैली के चित्र प्राप्त किये।

(4)

इन कलाकृतियों पर भारतीय कला प्रभाव के अतिरिक्त, ईरानी तथा चीनी प्रभाव सुस्पष्ट है। बामियाँ के उत्तर में फन्दुकिस्तान में भी बौद्ध मठों की खोज का श्रेय डॉ० स्टीन को प्राप्त है। इन मठों में भारत के गुप्त तथा पाल राजाओं के आदेशों पर चित्र बनाये गए।

डॉ० स्टीन ने बड़ी सावधानी से खुत्तन के चारों ओर (मध्य एशिया) के भवनों की भित्तियों से भित्तिचित्रों को लगभग २ इंच मोटी पलास्तर की तह के साथ उतार लिया और पलस्तर के इन चित्र खण्डों को अल्मोनियम के फ्रेमों में कसकर, इनकी सुरक्षा हेतु इन्हें वहाँ से हटा लिया। ये विशाल चित्र अब डायरेक्टर जनरल ऑफ आरकेलाजीकल सर्वे ऑफ इंडिया-नई दिल्ली के संरक्षण में हैं और इनको सेंट्रल एशिया एन्टीक्वीटीज म्युजियम-जनपथ नई दिल्ली के एक विशाल कक्ष की दीवारों पर कला आलोचकों तथा जनता के अवलोकन हेतु पुनः पुरानी अवस्था तथा योजना में सजोया गया है। इन मानवाकार से भी बड़ी आकृतियों वाले भित्तिचित्रों की रेखा, आकृति-रचना तथा रंग योजना पर अजन्ता की भारतीय कला का गहरा प्रभाव है। लेकाक तथा स्टीन के द्वारा खोजे गए दनदन-अहिलिक के भित्तिचित्र, जो आठवीं शताब्दी के है, ऐसे प्रतीत होते हैं कि अजन्ता के किसी कुशल चित्रकार ने अंकित किये है।

चिद्युटग्नु में लेकाक ने आठवीं शताब्दी के कुछ चित्रित झंडे खुदाई में प्राप्त किये हैं जो तिब्बत के मंदिरों के थानका नामी झंडों से मिलते-जुलते हैं। थानका चित्रों की परम्परा निःसन्देह बहुत प्राचीन है और तिब्बत के कई प्राचीन मंदिरों में इस प्रकार के झंडे प्राप्त हुए हैं। इन प्राचीन थानका चित्रों के कुछ उदाहरण निश्चय ही सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व के हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के एक चीनी आलोचक टेपघुन के एक उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि यह चित्र भारत में भी बनते थे। विशेष रूप से बंगाल स्थित नालंदा मठ में बौद्ध-भिक्षु या पुजारियों के द्वारा बुद्ध तथा बोधिसत्व के चित्र पश्चिमी देशों से मँगाये हुए पट पर बनाये जाते थे। ग्यारहवीं शताब्दी में मगध, तिब्बत, नेपाल आदि देशों का आपस में गहरा सम्पर्क था, इस कारण यह सम्भव हो सकता है कि इन तीनों की कला में एक ही प्रकार की कलात्मक अभिव्यञ्जना हुई हो। अफगानिस्तान में कुछ ऐसे चित्रित काष्ठफलक तथा हाथीदाँत के फलक प्राप्त हुए हैं जिन पर बोधिसत्व की आकृतियाँ उत्कीर्णित हैं।

तिब्बत में चैत्य भवनों की बड़ी-बड़ी भित्तियों को बुद्ध की जीवन कथाओं से अलंकृत किया गया। इन चित्रावलियों पर बौद्ध दर्शन तथा कला का पूर्णरूपेण प्रभाव था। तिब्बत के कुछ भित्तिचित्र बहुत प्राचीन है और इनकी शैली में अजन्ता का अत्यधिक अनुकरण है। तिब्बत के थानका नामी झंडों के चित्र भी अपनी शैलीगत विशेषताओं के कारण प्राचीन भारतीय कला संस्थानों की याद दिलाते हैं। परसी ब्राउन महोदय का मत है कि

यह चित्र भित्तिचित्र भी कहे जा सकते है क्योंकि धरातल भित्तिचित्रण की प्रणाली पर बनाया गया है परन्तु फिर भी चित्र कपड़े पर बने टेम्परा चित्र है।

पूर्व-मध्यकाल—७०० ईसवी से १००० ईसवी तक।

उत्तर-मध्यकाल—१००० ईसवी से १५५० ईसवी तक।

मध्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (६०६ ई० से १५२६ ई० तक)

हूण जाति के आक्रमणों से गुप्तवंश नष्ट हो गया और देश में छोटे राज्य स्थापित होने लगे। अंत में लगभग एक शताब्दी पश्चात् थानेश्वर के राजा हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) ने सारे उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करके एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। मालवा तथा सौराष्ट्र पर उसने विजय प्राप्त की। वह हिन्दू मत का अनुयाई था। उसने भव्य देव-मंदिर बनवाये। उसके समय में नालंदा नगर (बिहार प्रान्त में) शिक्षा का महान केन्द्र था।

राजपूत काल में हर्ष के पश्चात भारतवर्ष में अराजकता फैल गई और राजपूतों ने छोटे-छोटे राज्य उत्तरी भारत में स्थापित कर लिये। ये राज्य लगभग पाँच सौ वर्ष तक रहे फिर एक-एक करके मुसलमान शासकों ने उन्हें जीत लिया। राजपूत विष्णु, दुर्गा तथा शिव के उपासक थे अतः उन्होंने देवताओं के विशाल मंदिर बनवाये। मुसलमान आक्रमण के समय भारत में निम्न राजपूत राज्य प्रसिद्ध थे—

मध्यकाल के राजवंश

(१) तोमर वंश—दिल्ली में तंवार या तोमर राज्य वंश के शासकों में अनंगपाल द्वितीय प्रसिद्ध हुआ। उसने दिल्ली का राज्य दोहते पृथ्वीराज चौहान (अजमेर के शासक) को दे दिया था।

(२) चौहान वंश—अजमेर में चौहान वंश राज्य करता था। इस वंश में पृथ्वीराज महान राजा हुआ उसने मुहम्मद गौरी को तरावड़ी की लड़ाई में हराया परन्तु ११६२ ई० में गौरी ने उसको कैद करके मरवा दिया।

(३) राठौर वंश—कन्नौज में राठौर वंश शासक था। इस वंश के जयचन्द राठौर की पुत्री संयुक्ता को पृथ्वीराज स्वयंवर से उठा ले गया। गौरी ने जयचंद को ११६४ ई० में हराया।

(४) पाल वंश—बिहार और बंगाल में पाल वंश और नेपाल में सेन वंश का बारहवीं शताब्दी ईसवी में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने अंत कर दिया।

(५) परमार वंश—मालवा में परमार वंश में राजा भोज (१०१८ से १०६० ई०) प्रसिद्ध कला-प्रेमी तथा कला मर्मज्ञ राजा हुआ। वह प्रसिद्ध विद्वान था।

(६) चन्देल वंश—बुन्देलखण्ड के चन्देल राज्य को १२०३ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने मुस्लिम राज्य में मिला लिया।

(७) सिसोदिया वंश—मेवाड़ के सिसोदिया वंश में राणा सांगा तथा महाराणा प्रताप महान योद्धा हुए। उन्होंने मुगलों से लड़ाइयाँ लड़ीं।

महमूद गज़नवी (९९७-१०३० ई०) ने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये और उसने जयपाल (पंजाब का राज्यपाल) तथा राजा आनंदपाल को हराया। उसने नगरकोट (काँगड़ा दुर्ग) १००९ ई० में जीता और लूट में चाँदी का बना एक ३० गज वर्गाकार माप का मकान ले गया। उसने मथुरा, कन्नौज, लाहौर तथा सोमनाथ पर आक्रमण कर लूटमार की। १२०६ ई० से १५२६ ई० तक भारत में निम्न 'पठान' या 'सुल्तान राजवंश' स्थापित हुए जिनसे राजनैतिक अशान्ति, अस्थिरता तथा हलचल बनी रही—

(१) गुलाम वंश (१२०५-१२९० ई०), (२) खिलजी वंश (१२९०-१३२० ई०), (३) तुगलक वंश (१३२०-१४१४ ई०), (४) सैय्यद वंश (१४१४-१४५० ई०), (५) लोदी वंश (१४५०-१५२६ ई०)

इस काल में मुसलमान भवन शैली में भवन बनाये गए।

पूर्व-मध्यकाल की चित्रकला
(७०० ई० से १००० ई० तक)

भारतवर्ष में पूर्व-मध्यकाल की चित्रकला के उदाहरण बहुत कम प्राप्त होते हैं। इस समय की अनेक साहित्यिक रचनाओं में चित्रकला का उल्लेख आया है। दसवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य कुछ भित्तिचित्र बनाये जाते रहे जिनके उदाहरण एलोरा के कैलाशनाथ मंदिर या वेरुल की गुफाओं में प्राप्त है।

पूर्व मध्यकाल के भित्तिचित्र (७०० ई० से १००० ई० तक)

एलोरा—एलोरा की गुफाओं को वेरुल के नाम से भी पुकारा जाता है। एलोरा के मंदिर अजन्ता से लगभग ८२ किलोमीटर या ५० मील की दूरी पर हैदराबाद राज्य में स्थित हैं। यह स्थान औरंगाबाद रेलवे स्टेशन से २६ किलोमीटर (लगभग १६ मील) की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर एक सम्पूर्ण पहाड़ी को काटकर मंदिरों के रूप में परिणित कर दिया गया है। एलोरा या एलूरा का प्राचीन नाम एलापुर है, यह स्थान आरम्भिक राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी था। कालान्तर में एलोरा (एलापुर) में राजाकृष्ण देवराय ने सर्वप्रथम एलोरा के कैलाशनाथ मंदिरों का निर्माण कार्य एक पहाड़ी को कटवाकर आरम्भ कराया था। इन गुफाओं का शिल्प रीतिबद्ध है। ये गुफाएं एक लम्बी गहरी ढालू चट्टान के उत्तरी दक्षिणी पठार की ओर काटकर बनायी गई हैं। इन गुफाओं में दाहिनी ओर की दक्षिण की बारह गुफाएँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं, मध्य की सत्रह गुफाएँ ब्राह्मण धर्म से तथा उत्तर की पाँच गुफाएँ जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। इन गुफाओं के निकट दो गुफाएँ और हैं। बौद्ध गुफाओं का समय अनुमानतः ५५० ई०-६५० ईसवी है। ये गुफाएँ चित्रित थी परन्तु अब

ने तीर्थों के चित्रों की एक पुस्तिका राजकुमारी हेम-गौरांगी को दिखाई थी। इस पुस्तिका को देख राजकुमारी ने तीर्थों के भ्रमण तथा दर्शन का निश्चय किया। एक अन्य प्रसंग में भगवान शंकर के क्रीड़ा-गृह की भित्ति पर अंकित पालतू मोर और राजहंसों के उत्कृष्ट चित्रों का उल्लेख आया है।

'प्रसन्नराघव'–'प्रसन्नराघव नाटक' १३वीं शताब्दी के जयदेव कवि की रचना है। इसमें मैत्रेयी द्वारा अंकित राम-सीता के संयुक्त चित्र का वर्णन आया है।

उपरोक्त ग्रंथों के आधार पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि चित्रकला का समाज में व्यापक रूप से प्रचलन था परन्तु इस समय की ऐसी कोई विशाल, उत्तम चित्र-रचना उत्तरी भारत में प्राप्त नहीं होती जिससे चित्रकला का तत्कालीन समाज में महत्त्व स्थापित किया जा सके। इस समय साधारण स्तर के कुछ भित्तिचित्रों के उदाहरण प्राप्त होते हैं जो दक्षिणी भारत या गुजरात में बनाये गए थे। इन भित्तिचित्रों का यथा स्थान वर्णन किया जाएगा। इस समय में व्यापक रूप से प्रचलित नवोदित प्रगतिशील कला के जो उदाहरण प्राप्त हुए वे भित्तिचित्र नहीं हैं, बल्कि चित्रकला के ये उदाहरण पोथी-चित्र या पुस्तक-चित्र हैं। इनमें से कुछ उदाहरण बंगाल में लिखी गई बौद्ध पोथियों (पाल शैली की पोथियों) में और कुछ मुख्यतः गुजरात या पश्चिमी-भारत में लिखी गई जैन पोथियों (जैन या जैनेतर पोथियों) में प्राप्त हैं।

पाल शैली

पूर्व पीठिका–सम्राट हर्ष के पश्चात् बंगाल की शासन-व्यवस्था लगभग सौ वर्ष तक विशृंखलित रही और ७३०-७४० ई० के मध्य बंगाल की जनता ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। बंगाल की जनता ने गोपाल नामक एक व्यक्ति को अपना राजा चुन लिया और बंगाल में शान्ति स्थापित हो गई। जनता के द्वारा निर्वाचित राजा गोपाल ने दक्षिणी बिहार तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। राजा गोपाल बंगाल के पाल वंश का प्रथम शासक था। गोपाल के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में राजा धर्मपाल और देवपाल ने साम्राज्य को और अधिक सुदृढ़ बनाया। इन्होंने राज्य की सीमा का विस्तार भी किया। यह राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में विजयसेन और नान्यदेव नामक राजाओं ने पश्चिमी बंगाल और मिथला में दो स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये और पाल वंश की शक्ति को कम कर दिया। सेनवंशीय राजाओं ने उत्तरी भारत पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस वंश के उत्तराधिकारी राजा सेन नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश में राजा लक्ष्मनसेन प्रसिद्ध शासक हुआ। सेनवंश ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। अतः बौद्ध धर्म के लिए आघात पहुँचा। इस प्रकार पालवंशीय शासकों के शासन की सीमा में जो क्षेत्र शेष बचा वह मुंगेर तक था जो अब पाल राजाओं का सीमित राज्य शेष रह गया था, उसको भी ११६७ ई० में मुसलमानों के आक्रमण ने समाप्त कर दिया। मुंगेर बिहार में स्थित है।

पालवंश का अंतिम शक्तिशाली राजा रामपाल हुआ जिसका राज्यकाल १०८४ ई० से ११३० ई० के मध्य में माना जाता है। इस राजा ने तिरहुत और उत्तरी बिहार को जीता था, इस प्रकार इन प्रदेशों में भी बौद्ध धर्म पहुँच गया था।

पाल-पोथियाँ—बंगाल तथा बिहार में लिखी गई दसवीं शताब्दी एवं परवर्ती काल की महायान बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक पोथियों में चित्र प्राप्त हुए हैं। ये सचित्र पोथियाँ, अच्छे तालपत्र या राजताल पर लिखी गई हैं। इन पोथियों की अनेक प्रतियाँ नेपाल, बंगाल तथा बिहार के अन्तर्गत—नालंदा, विक्रमशिला तथा भागलपुर में प्राप्त हुई हैं। इन पोथियों के पन्ने तालपत्र से बनाये गए हैं। ये तालपत्र के पृष्ठ लगभग २२.५ इंच लम्बे तथा २.५ इंच चौड़े हैं। इन तालपत्रों से बने पृष्ठों पर देवनागरी लिपि में सुंदर और कटे-कटे छापे के समान अक्षरों में ये पोथियाँ लिखी गई हैं। कुछ पोथियों में काली पृष्ठभूमि पर लिखायी सफेद रंग से की गई है।[3] इन पृष्ठों के बीच-बीच में आयताकार या वर्गाकार स्थान रिक्त छोड़ दिये जाते थे जिनमें महायान देवी-देवताओं के चित्र बनाये जाते थे। ये वर्गाकार चित्र एक या दो इंच वर्गाकार के होते थे। इन पोथियों में महायान देवी-देवताओं तथा बुद्ध के चित्र बनाये जाते थे। इन पोथियों की जिल्द के लिए दोनों ओर पटरे लगाये जाते थे, जिन पर उसी प्रकार चित्र बनाये जाते थे। पटरों पर बुद्ध की जीवनी या जातक कथाओं को सुंदर अक्षरों में लिखा जाता था। लिपिकार बड़ी सावधानी से लिखाई करता था।

पाल शैली की सचित्र पोथियाँ—इस प्रकार की सचित्र पाल पोथियों में 'प्रज्ञापारमित', 'साधनमाला', 'पंचशिक्षा', 'गंधव्यूह' तथा 'करन्देवगुहा' महायान बौद्ध-पोथियाँ प्राप्त हैं।[4] (देखिए छाया फलक संख्या-४) इस प्रकार की सचित्र पालपोथियाँ दो दर्जन से भी कम प्राप्त हैं। तिब्बत के इतिहासकार लामा तारानाथ ने धीमान तथा वित्तपाल को पाल शैली या पाल चित्रकला का संस्थापक माना है।[5]

ये पोथियाँ विशेष रूप से बंगाल में लिखी गईं। शीघ्र ही नेपाल तथा बिहार भी इस शैली के केन्द्र बन गए, परन्तु नेपाल के चित्रों की मुखाकृतियों में अत्यधिक मंगोल प्रभाव आ गया है, कदाचित यह नेपाल का अपना स्थानीय प्रभाव है।

पाल शैली के चित्रों की विशेषताएँ—इस शैली के अधिकांश चित्र पोथियों में ही प्राप्त होते हैं और इनका आकार पर्याप्त लघु है। इन पुस्तक चित्रों के अतिरिक्त इस शैली के नेपाल तथा बंगाल में चित्रित परवर्तीकाल के पटचित्र भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें अजन्ता के भित्तिचित्रण की परोचित विशेषताएँ समाविष्ट हो गई थीं। इस शैली में अजन्ता की शैली का पुष्ट रूप नहीं है और अजन्ता-शैली की विकृति को प्राप्त अवस्था दिखाई पड़ती है। पोथियों के पृष्ठों के बीच-बीच में जो चित्र बनाये गए हैं उनमें लाल (सिंदूर, हिंगुल तथा महावर), नीला (लाजवर्दी या नील), सफेद (खड़िया या कासगर), काला (काजल) तथा मूल रंगों के मिश्रण से बनाये गए गुलाबी, बैंगनी तथा फाख्तई आदि रंगों का प्रयोग भी किया गया है।

ये पोथियाँ उत्तम प्रकार के तालपत्रों को छाया में सुखाकर बनाये गए पत्रों पर तैयार की गई हैं। इन तालपत्रों की लम्बाई २२.२५ इंच तथा चौड़ाई २.२५ इंच है। यह चित्र महायान धर्म से सम्बन्धित हैं। भारत की चित्रकला धर्म प्रधान रही है, अतः इस शैली में भी केवल धर्म से सम्बन्धित बुद्ध के चित्र मिलते हैं।

इन चित्रों की लिखाई निर्बल है यद्यपि इस शैली में अजन्ता शैली का रिक्थ विद्यमान है। आकृतियों की लिखाई में सवाचश्म चेहरों की अधिकता है और चेहरे प्रायः एक ही कौड़े (प्रकार) के बनाये गए हैं। मानवाकृतियों की नाकें लम्बी हैं जो परले गाल की सीमारेखा से आगे निकली बनायी गई हैं और आँखें बड़ी-बड़ी तथा पास-पास बनायी गई हैं। आकृतियों के हाथों तथा पैरों की मुद्राओं में अकड़-जकड़ है और लिखाई में निर्बलता है। अजन्ता की उत्तराधिकारणी होने के कारण इस शैली में ह्रास के चिन्ह अपेक्षाकृत कम हैं। सम्भवतः यह शैली ही 'नाग शैली' है जिसका तारानाथ ने उल्लेख किया है।

चित्रों में आकृतियों की सीमारेखाएँ बनायी गई हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि तूलिका के स्थान पर निब (कठोर लेखनी) का प्रयोग किया गया है, क्योंकि रेखाओं में कोमलता नहीं है और मोटाई बराबर है। इन रेखाओं में प्रवाह तो है परन्तु मोटाई में क्रमिक उतार-चढ़ाव नहीं है। आँखें बड़ी-बड़ी (कर्णस्पर्शी) हैं और वक्र रेखाओं से बनायी गई हैं। आकृतियों के सिर चपटे हैं। चित्र की आकृतियों में सजीवता और स्वच्छन्दता का अभाव है। इन दृष्टान्त चित्रों में आलंकारिकता का पर्याप्त समावेश है।

जैन शैली

श्वेताम्बर जैन धर्म की अनेक सचित्र पोथियाँ ११०० ई० से १५०० ई० के मध्य विशेष रूप से लिखी गई। इस प्रकार की चित्रित पोथियों से भविष्य की कला-शैली की एक आधारशिला तैयार होने लगी थी, इस कारण इस कलाधारा का ऐतिहासिक महत्त्व है। इस शैली के नाम के सम्बन्ध में अनेक विवाद हैं और इस शैली को जैन शैली, गुजरात शैली, पश्चिमी भारत शैली (पश्चिमी भारतीय शैली) तथा अपभ्रंश शैली के नामों से पुकारा गया है।

जैन शैली का उपयुक्त नाम—डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने १९४२ ई० में 'बर्लिन म्यूजियम' में सुरक्षित 'कल्पसूत्र' की एक सचित्र प्रति पाई। इस 'कल्पसूत्र' की प्रति के चित्रों का परिचय प्रकाशित करके उन्होंने कला आलोचकों में गुजरात क्षेत्र से विकसित कला शैली के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की। कालान्तर में उन्हें 'बालगोपाल-स्तुति', 'गीत-गोविंद', 'रतिरहस्य' तथा 'दुर्गासप्तशती' आदि सचित्र ग्रंथ प्राप्त हुए जो इस शैली के थे। ये ग्रंथ ऐसे थे जिनका न तो गुजरात से कोई सम्बन्ध था और न जैन धर्म से ही कोई सम्बन्ध था। अतः डॉ० आनंद कुमार स्वामी ने इस शैली का नाम लामा तारानाथ के द्वारा दिये गए नाम 'पश्चिमी-भारत शैली' का समर्थन करते हुए इस शैली का नवीन नाम 'पश्चिम भारतीय शैली' माना।

स्व० नानालाल चमनलाल मेहता ने १९२४ ई० में गुजरात शैली के नाम से इस शैली का विवेचन 'रूपम्' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। स्व० मेहता के इस निबन्ध का आधार गुजरात में प्राप्त 'वसन्तविलास' की संस्कृत-गुजराती चित्रित एक काव्य-पट्टी थी। कपड़े की इस पट्टी (चित्रित पट) का लिपिकाल १४५१ ई० है। इस लम्बे पट्टीनुमा पट पर ७९ चित्र अंकित हैं। ये चित्र जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। स्व० मेहता ने इन चित्रों को 'गुजरात शैली' के नाम से पुकारा। उन्होंने १९२६ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन इंडियन पेंटिंग' में इन चित्रों का उल्लेख किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वतंत्र रूप से एक अध्याय 'स्टडीज़ इन इंडियन पेंटिंग ऑफ गुजरात', लिखकर प्रमाणित विवरण प्रस्तुत किये। इस चित्रित-पट में काव्य के आधार पर बसंत की शोभा को अत्यन्त सजीव ढंग से चित्रित किया गया है।

ग्यारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी-भारत में जिन सचित्र ग्रंथों को तैयार किया गया, उनका विषय यद्यपि जैनेत्तर भी था, परन्तु इन ग्रंथों का मुख्य विषय जैन धर्म था, इसलिए इन ग्रंथों के चित्रों की शैली का एक तीसरा नाम 'जैन शैली' प्रस्तुत किया गया। इस नाम से सहमत होकर परसी ब्राउन तथा अन्य लेखकों ने इसे इसी नाम से सम्बोधित किया है। इन चित्रों को यह नाम इसलिए भी प्रदान किया गया कि यह विश्वास किया जाता रहा कि ये चित्र जैन साधुओं के द्वारा बनाये गए हैं।

कालान्तर में इस शैली के अनेक सचित्र ग्रंथ, अहमदाबाद तथा गुजरात के बाहर मारवाड़, मालवा, पंजाब तथा पूर्वी भारत में जौनपुर (उत्तर प्रदेश), अवध (उत्तर प्रदेश), बंगाल, उड़ीसा, नेपाल के अतिरिक्त ब्रह्मा (बर्मा) तथा श्याम में भी प्राप्त हुए। इस शैली की जौनपुर में बनी 'कल्पसूत्र' की एक चित्रित प्रति साराभाई ने प्राप्त की। जौनपुर (उत्तर प्रदेश) उत्तर भारत के पूर्व में स्थित है, अतः जो शैली पूर्वी भारत तक प्रचलित थी उसको 'पश्चिमी भारतीय शैली' के नाम से पुकारना ठीक नहीं और तारानाथ या डॉ० कुमार स्वामी का मत उपयुक्त नहीं है। कल्पसूत्र की इस प्रति का समय १४६५ ई० है और इस प्रति के लिपिकार पं० कर्णसिंह के पुत्र श्री देवीदास गौड़ कायस्थ हैं। गौड़ कायस्थों का निवास स्थान विशेष रूप से उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग, बंगाल तथा बिहार था। ये गौड़ कायस्थ जो उत्तर प्रदेश की ओर आ गये थे, अब पुनः मुसलमानों के आगमन से पूर्वी भारत की ओर चले गये। जैसे बंगाल के पाल वंश के राजा देवपाल के लेखक कायस्थ थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह शैली गुजरात या पश्चिम भारत तक ही सीमित नहीं रही और इसका प्रसार पूर्वी भारत तथा नेपाल में भी हुआ। इस प्रकार इस शैली के बारे में यह धारणा भी भ्रमपूर्ण सिद्ध हुई कि इसे एक सीमित क्षेत्र की कला मानकर 'पश्चिम भारतीय शैली' या 'गुजरात शैली' के नाम से पुकारा जाय। इसी प्रकार १९२९ ई० में श्री गांगुली ने 'बाल गोपाल स्तुति' के वैष्णव-धर्म से सम्बन्धित चित्रों की सूचना दी जो इस शैली के थे। इसी प्रकार 'वसन्तविलास' और 'चौरपंचाशिका'

आदि-पोथियों के चित्र भी जैनेत्तर हैं। इस प्रकार यह शैली जैन धर्म के अतिरिक्त वैष्णव धर्म के ग्रंथों या जैनेत्तर ग्रंथों में भी प्रयुक्त हुई, अतः 'जैन शैली' नाम भी सार्थक सिद्ध प्रतीत नहीं होता। अतः इन सब कारणों को ध्यान में रखते हुए डॉ० मोती चन्द तथा राय कृष्ण दास ने इस शैली को 'अपभ्रंश शैली' के नाम से पुकारना अधिक उपयुक्त समझा है। उनका मत है कि यह शैली अपने निजत्व को खो चुकी थी और एक महान शैली (अजन्ता-शैली) के विकृत रूप को प्राप्त थी, इसलिए इस शैली के लिए अपभ्रंश शब्द ही एक ऐसा शब्द है जिसके द्वारा तत्कालीन विकृति को प्राप्त शैलियों या परिवर्तनशील कला-प्रवृत्तियों की अभिव्यंजना हो सकती है।

भारतीय साहित्य में यह काल प्राकृत भाषाओं की रचना का काल है। इस काल में डिंगल तथा पिंगल लोक भाषाओं (ग्रामीण भाषाओं) में वीर काव्य की रचना की गई। इस काल को साहित्य में वीर गाथा काल, चारण काल या अपभ्रंश काल के नाम से पुकारा गया है क्योंकि इस काल में मूल संस्कृत भाषा में रचनाएँ नहीं की गईं और कालिदास की शृंगार काव्य परम्परा का रूप ही मिट गया। युद्ध की हाहाकार में राजपूत योद्धाओं ने अपने सौम्य और शान्त रूप को त्यागकर मुसलमानों से देश को बचाने के लिए महाकाल का स्मरण किया और 'हर-हर महादेव' का नारा लगाया। इन योद्धाओं ने केशरिये बानें पहन मुंड मालाएँ धारण कीं—कनपट्टी दाढ़ियाँ तथा शेर जैसी मूछें धारण कर अपने निजी देव-रूप से भ्रमित हो विकराल महाकाल रूप धारण किया और हर ओर प्राचीन मान्यताएँ परम्पराएँ भ्रष्ट हो गईं। यही पतन कला और साहित्य में हुआ अतः इस अपभ्रंश शब्द से इस कला की समस्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी परिलक्षित हो जाती है।

इस 'अपभ्रंश शैली' या 'ग्रामीण शैली' या 'ग्राम्या शैली' या तथाकथित 'जैन-शैली', 'गुजराती शैली या पश्चिम भारतीय शैली' के तीनों रूपों में चित्र उपलब्ध हैं—(१) ताड़ पत्रों पर बने पोथीचित्र, (२) कपड़े पर बने पट-चित्र (चित्रपट या चित्रित पट), (३) कागज पर बने पोथीचित्र या फुटकर चित्र। इस प्रकार के चित्र आज भारत, अमेरिका, नेपाल तथा ब्रिटेन के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। 'अपभ्रंश शैली' की सचित्र पोथियों की बड़ी संख्या जैन धर्म से सम्बन्धित है।

इस शैली का सविधान यदि देखा जाय तो यह शैली अजन्ता शैली का भ्रष्ट रूप प्रतीत होती है। यह शैली ह्रास को प्राप्त है और पूर्व विकसित कला परम्परा में अप्रगतिशील होने के कारण पहली दृष्टि में अजन्ता शैली से भिन्न लगती है। यह शैली अपनी मूल विशेषताओं को खो चुकी थी, इस कारण इस शैली का नाम 'अपभ्रंश शैली' उपयुक्त है। अपभ्रंश नाम के अन्तर्गत पाल-शैली, ऐलोरा के १०वीं तथा ११वीं शताब्दी के चित्र तथा जैन-शैली सभी को रखा जा सकता है।

अपभ्रंश शैली के चित्र—इस शैली के चित्र बसन्तविलास (१४५१ ई०), 'बालगोपालस्तुति', 'गीत-गोविंद', 'दुर्गासप्तशती', 'रतिरहस्य', 'कल्पसूत्र' आदि पोथियों में प्राप्त हैं जिनका

(12)

उल्लेख पहले दिया जा चुका है। 'कल्पसूत्र' की एक प्रति साराभाई मणिकलाल को जौनपुर में प्राप्त हुई थी। कल्पसूत्र की इस प्रति का लिपिकाल १४६५ ई० है। 'कल्पसूत्र' की दूसरी प्रति रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई तथा तीसरी प्रति सेठ आणंद जी कल्याण जी के पास लीमड़ी में भी बतायी जाती है। इसका लिपिकाल १४१५ ई० माना जाता है। 'कल्पसूत्र' की एक चौथी प्रति जौनपुर की है जो स्वर्णाक्षरों में तैयार की गई है और इस समय बड़ौदा के नरसिंह जी के पोल को ज्ञान मंदिर में सुरक्षित है। 'कल्पसूत्र' की यह प्रति सबसे उत्तम प्रति मानी जाती है। यह प्रति १४६७ ई० में जौनपुर के बादशाह हुसेनशाह शर्की के शासनकाल में तैयार की गई थी। 'कल्पसूत्र' की एक अन्य प्रति अहमदाबाद में मुनि दयाविजय के संग्रह में सुरक्षित है। यह प्रति पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तैयार की गई है और स्वर्णाक्षरों में लिखी गई है।

मारवाड़ तथा गुजरात नवीं शताब्दी से ही कला के केन्द्र बन गए थे और इस शैली का यहीं पर ही जन्म हुआ। १४५१ ईसवी की लिखी 'बसन्तविलास' की सचित्र काव्य-पत्री (चित्रित पट), जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, स्व० मेहता को १९२४ ई० में अहमदाबाद में प्राप्त हुई। यह चित्रित गुजरात के शासक अहमद शाह कुतुबउद्दीन के समय का है। 'बसन्तविलास' की यह प्रति जन्मपत्रीनुमा या कुन्डलीनुमा लम्बे कपड़े पर लिखी गई चित्रित पट्टी है।[1] इस पट्टी की लम्बाई ४३६ इंच तथा चौड़ाई ९.२ इंच है और इस पत्री के बायीं ओर एक इंच चौड़ा हाशिया है और दाहिनी ओर .७५ इंच चौड़ा हाशिया है। 'बसन्तविलास' में बसन्तागमन और विशेष रूप से फाल्गुन मास का वर्णन है। इस काव्य-कथा में एक पति और पत्नी का प्रेम-प्रसंग अंकित है जो कालिदास की महान काव्य रचना 'ऋतुसंहार' पर आधारित है। इस लम्बी कपड़े की पट्टी या पत्री पर लिखाई के साथ-साथ चित्र भी बनाये गए हैं। चित्रों में मानवाकृतियों की लिखाई में शक्तिशाली रेखा का प्रयोग है। इन चित्रों में चित्रकार ने वर्णनात्मक शैली अपनाई है और चित्रों की रंग योजना सरल है। लाल, पीले तथा नीले रंग का प्रयोग है, पृष्ठभूमि साधारणतया पीली है। स्त्रियों को साड़ी पहने चित्रित किया गया है और उनकी चोली में कोहनी तक आस्तीनें हैं। यह चोली नाभि या कमर तक उनके शरीर को ढके रहती है। 'बसन्तविलास' की प्रति मुसलमान शासकों के समय में गुजरात में लिखी गई। सम्प्रति यह पट्टी, 'फ्रायर आर्ट गैलरी'-वाशिंगटन में सुरक्षित है। इस समय की भवन कला पर मुसलमानी प्रभाव पड़ने लगा था; और जौनपुर में हिन्दू तथा मुसलमान कला के सम्मिश्रण से सुंदर भवन बनाये गए किन्तु इस चित्रावली पर मुसलमानी प्रभाव नहीं है। इस समय तक इस्लाम धर्म के सांस्कृतिक केन्द्र ईरान की कलाकृतियों (चित्रों) को एशिया में प्रसिद्धि तथा मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी।'

श्वेताम्बर जैन धर्म से सम्बन्धित ताड़पत्रीय पोथियों में 'निशीथचूर्णी' 'अंगसूत्र', 'दशवैकालिक लघुवृत्ति', 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित', 'नेमिनाथचरित', 'कथासरित्सागर',

'संग्रहणीयसूत्र', 'उत्तराध्यनसूत्र', 'श्रावकप्रतिक्रमणचूर्णी' तथा 'कल्पसूत्र' है। इन सचित्र पोथियों का लिपिकाल १००० ई० से १५०० ई० के मध्य माना जाता है। ये पोथियाँ भारत में आज पाटन, बड़ौदा, खंभात, अहमदाबाद तथा जैसलमेर के निजी पुस्तकालयों या अमेरिका के बोस्टन स्थित संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

पाटन के ग्रंथ-भंडार में 'निशीथचूर्णी' की एक प्रति सुरक्षित है जिसका लिपिकाल ११०० ई० है। इसमें अपभ्रंश कला के उदाहरण प्राप्त होते हैं। अंगसूत्र की तीन सचित्र प्रतियाँ तथा 'दशवैकालिक' लघुवृत्ति की एक सचित्र प्रति शान्तिनाथ भंडार खम्भात के संरक्षण में है। 'दशवैकालिक' की यह प्रति ११४३ ई० की है। बड़ौदा के समीप एक जैन पुस्तक भण्डार में ११६१ ई० के सात ग्रंथ प्राप्त हैं। इन ग्रंथों में सुंदर चित्र बने हुए हैं जिनमें सोलह विद्यादेवियों, सरस्वती, लक्ष्मी, अम्बिका, चक्रदेवी आदि के चित्र हैं। शान्तिनाथ भंडार में १२४१ ईसवी की 'नेमिनाथ चरित' की भी एक सचित्र प्रति सुरक्षित है। इन उदाहरणों के अतिरिक्त 'कथा रत्नसागर' की प्रति में भी चित्र प्राप्त हुए हैं। बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित १३६० ई० की लिखी 'श्रावक प्रतिक्रमण चूर्णी' की प्रति से भी चित्रकला का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। पाटन के शान्तिनाथ भंडार में १४३३ ईसवी का कपड़े पर चित्रित एक चित्रपट था जो 'पंचतीर्थपट' (या पंचतीर्थीपट) के नाम से विख्यात था परन्तु अब यह चित्र अप्राप्य है। इसकी एक अनुकृति 'इण्डियन आर्ट एण्ड लेटर्स' में १६३२ ईसवी में प्रकाशित हुई है।"

बोस्टन संग्रहालय तथा गुजरात के श्री भोगीलाल जी के संग्रह में कागज़ पर लिखी हुई 'बालगोपाल स्तुति' और बड़ौदा के मंजुलाल मजूमदार के निजी पुस्तकालय में 'दुर्गासप्तशती' की पोथियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। जोधपुर के किसी पुस्तकालय में 'पाण्डवचरित' नामक ग्रंथ की पन्द्रहवीं शताब्दी की लिखी गई एक प्रति बताई जाती है। इस शैली में जहाँ 'मार्कण्डेय पुराण' तथा 'दुर्गासप्तशती' जैसे वैष्णव ग्रंथों का निर्माण किया गया, वहीं 'रतिरहस्य' और 'कामसूत्र' पर आधारित कामशास्त्र से सम्बन्धित चित्र भी बनाये गए।

अपभ्रंश शैली के चित्रों की विशेषताएँ—इस शैली में पूर्ववर्ती शैलियों की तुलना में ह्रास और निर्बलता के चिन्ह अधिक हैं। कदाचित इस निर्बलता का कारण यह भी हो सकता है कि ये चित्रित जैन पोथियाँ धर्म अनुयायियों द्वारा जनता में बाँटी जाती थीं। इस कारण इन पोथियों की अत्यधिक माँग थी जिसको पूरा करने के लिये जैन मुनि या आचार्य, चित्रकार तथा लिपिक शीघ्रता से कार्य करते थे और पोथियाँ लिखते थे। इस शीघ्रता के कारण यह आशा नहीं की जा सकती कि चित्र लिखाई की सावधानी, कारीगरी और बारीक रेखांकन की पूर्णता को प्राप्त कर पाते। चित्र की लिखाई में जल्दबाजी होने के कारण कमजोरी और कठोरता आ गई है और आकृतियों की लिखाई में सुमधुर गोलाई के स्थान पर तीक्ष्ण कोणात्मकता का प्रयोग किया गया है।

इन चित्रों में मानव आकृतियों के चेहरे सवाचश्म है और एक ही ढंग के बने है। नाक अनुपात से अधिक लम्बी और नुकीली बनायी गई है जो परले गाल की सीमा रेखा से आगे निकल गई है। चेहरे सवाचश्म और एक ही आकार-प्रकार (कैंड़े) के बनाये गए है। चिबुक आम की गुठली के समान चपटी और छोटी है, आँखे पास-पास और बड़ी-बड़ी बनायी गई है और उनकी रचना दो चक्रों के द्वारा की गई है। पुतली बनाने के लिए इन चक्रों के मध्य एक बिन्दी लगा दी गई है जो अनुपात रहित और गोलाई रहित है। नेत्र चेहरे की सीमारेखा से बाहर रहने के कारण आँखों मे उग्रता का भाव है और बाहर निकली दिखाई पड़ती है। उंगलियों का रेखांकन कठोर, निर्बल और अत्यधिक आलंकारिक तथा रूढ़िबद्ध है। पेट का भाग बहुत बड़ा बनाया गया है और छाती उभरी हुई बनायी गई है। पशु-पक्षी तथा मानव आकृतियाँ रुई के गुड्डे या गुजरात की कठपुतलियों के समान प्रतीत होती है।" बादल रुई के ढेर के समान दिखाई पड़ते है। चित्रों मे अनेक आकृतियों की रेखाएँ काले रंग से अंकित की गई है। आकृतियों मे गोलाई लाने के लिये छाया का प्रयोग किया गया है। यह छाया बारीक काली रेखाओं से लगायी गई है। कुछ विद्वानों का विचार है कि ये रेखाएँ निब से बनायी गई है। परन्तु वास्तव में रेखाएँ तूलिका से ही बनायी गई हैं। कलाकार के हाथ में निर्बलता और कठोरता आ जाने के कारण रेखा मे बारीकी और क्रमिक मोटापन तथा पतलापन नहीं है। ये रेखाएँ बराबर मोटाई की बनायी गई हैं। इसी कारण इन रेखाओं से निब से बनी रेखाओं का भ्रम होता है। इन रेखाओं की अकुशलता का किसी सीमा तक एक कारण यह भी हो सकता है कि ये चित्र भारत की भित्तिचित्रण पद्धति पर कार्य करने वाले कलाकार ही बना रहे थे। भित्ति पर चित्रकार को बड़े चित्र बनाने मे रेखा की पूर्णता दिखाने में अपनी योग्यता दिखाने का अधिक अवसर था परन्तु जब भित्ति-चित्रण परम्परा के वंशज चित्रकारों के हाथ में लघु चित्र का कार्य आया तो वह रेखा को अत्यधिक बारीक (महीन) नहीं बना सके ओर उनकी रेखा तालपत्रीय या कागजी लघुचित्रों के अनुकूल नहीं बन सकी। कुछ लेखकों ने इन पोथीचित्रों को जैन साधुओं के द्वारा बनाया हुआ माना है परन्तु यह बात संगत नहीं। वास्तव में यह चित्र अधिकांश साधारण व्यवसायी चित्रकारों के द्वारा बनाये जाते थे, जिनको पारिश्रमिक बहुत कम मिलता था। इस प्रकार के दो चित्रकारों के आज नाम भी प्राप्त होते है जिससे प्रतीत होता है कि ये चित्र साधुओं ने नहीं बनाये।

अपभ्रंश शैली के चित्रों में अधिकांश चमकदार उष्ण रंगों का प्रयोग है। पृष्ठभूमि मे बहुधा लाल रंग का सपाट प्रयोग किया गया है और फाख्ताई, पीले, श्वेत, नीले रंगों का समावेश किया गया है। तीर्थंकरों के अनेक रूपों मे भिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग है। महावीर की आकृति मे पीला, पार्श्वनाथ की आकृति मे नीला, नेमीनाथ की आकृति मे काला और ऋषभनाथ की आकृति में स्वर्णिम वर्ण का प्रयोग है।

अपभ्रंश शैली में प्राकृतिक रूपों को भुला दिया गया है अतः स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। प्रत्येक आकृति का रूढ़ि या परम्परा के आधार पर निर्माण किया गया है अतः चित्र निर्जीव तथा भद्दे है।

15

५

मुगलकाल की चित्रकला

(दरबारी चित्रकला)

(१५५० ई० से १८५७ ईसवी तक)

आदि स्रोत—ईरानी फारसी मुगल कला का आदि स्रोत या जन्मस्थान समरकन्द और हिरात था। पन्द्रहवीं शताब्दी में तैमूरवंश के संरक्षण में फारस की कला उत्कर्ष को प्राप्त हुई। तैमूर का भारतवर्ष से सम्बन्ध, साधारणतया कला की दृष्टि से नहीं माना जाता है, बल्कि संहारक के रूप में माना जाता है। उसने भारतवर्ष पर १३९८ ई० में आक्रमण किया और लूटमार, विध्वंस तथा बर्बरता का प्रदर्शन किया। तैमूर के तातार सैनिकों ने लूटमार की और उन्होंने भवनों को गिरा दिया तथा स्थान-स्थान पर आग लगायी गई और अत्याचार किये गए। परन्तु दूसरी ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि तैमूरवंश बर्बर न था, उसमें पूर्णता सभ्य और कलाप्रिय शासकों का जन्म हुआ। इस वंश के समान फारस में अन्य कोई ऐसा सभ्य और सुसंस्कृत वंश नहीं हुआ। इस वंश के शासकों ने चित्रकला को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया और एक दरबारी चित्रकला का विकास हुआ।

महान संहारक और विजेता तैमूर का पुत्र शाहरुख स्वयं एक कवि था और उसने अपने दरबार में कवियों और चित्रकारों को आश्रय प्रदान किया। उसने एक राजदूत-दल चीन भेजा। इस दूतसंघ में एक चित्रकार भी था।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में खुरासा के सुल्तान हुसैन के संरक्षण में बिहजाद जैसा नामी चित्रकार था। बिहजाद ईरानी शैली का अपने समय का सबसे उत्तम चित्रकार था। इसी कारण बिहजाद को 'पूर्व का रैफेल' कहकर पुकारा गया है।' बिहजाद पहले तैमूरवंशीय सुल्तान हुसैन बैगरा (मिर्ज़ा) का दरबारी चित्रकार था, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् सुल्तान शाह इस्माईल के संरक्षण में चला गया। बाबर ने भी आगे चलकर 'बाबरनामा' या अपनी आत्मकथा में उसका वर्णन किया है। बाबर के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट [illegible]

(76)

ने बिहज़ाद के चित्रों का अध्ययन किया था। बिहज़ाद स्कूल के उत्तराधिकारियों ने उसकी ईरानी शैली को अधिक उन्नत किया और फारस के विभिन्न शासकों ने चित्रकला तथा चित्रकारों को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि फारस में सोलहवीं शताब्दी तक एक उच्च फारसी-ईरानी कलाशैली विकसित हो चुकी थी जो मुगल शासकों के साथ भारतवर्ष में आई। अब हमें यह देखना है कि भारत में यह फारसी-ईरानी कलाशैली किस प्रकार आई और उसका भारतीय एवं मौलिक मुगल रूप किस प्रकार निखरा।

ईरानी शैली—इस्लाम धर्म के उदय के साथ ईरान में जो कला-शैली प्रचलित हुई, उसमें भारतीय चित्रकला की गहरी छाप थी। इस्लाम में मानव आकृतियाँ या जीवधारियों की आकृतियाँ चित्रित करना धर्म निषिद्ध था अतः इस्लामी चित्रकला में आलंकारिक आलेखनों या ज्यामितीय तरहों का रूप निखरकर आया। प्रारम्भ में इस्लामी चित्रकार जीवधारियों की आकृतियों के चित्रण के प्रति उदासीन रहे परन्तु शनैः-शनैः धार्मिक कट्टरता शिथिल पड़ने लगी और पुष्प-पत्तियों, पशु-पक्षियों तथा मानवाकृतियों का भी अंकन प्रचलित हो गया।

तैमूर का पुत्र शाहरुख महान कला प्रेमी हुआ। उसने हिरात नगर को राजधानी बनाया और हिरात कला का केन्द्र बन गया। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस हिरात कलम या शैली का प्रसिद्ध चित्रकार बिहज़ाद हुआ। इस ईरानी या हिरात शैली का बिहज़ाद तथा उसके शिष्यों ने विकास किया। यह शैली भारत में बाबर तथा हुमायूँ के काल में पहुँची।

ईरानी कला की विशेषताएँ

१. **रेखाँकन**—ईरानी कला पर अजन्ता की भारतीय रेखाँकन शैली तथा चीनी कला की छाप पड़ चुकी थी। दूसरी ओर इस शैली पर इस्लामी नक्काशी की सूक्ष्म कला का प्रभाव भी था। ईरानी शैली रेखा पर आधारित थी। इस शैली में रेखाएँ भारतीय गोलाई-युक्त नहीं हैं बल्कि सपाटेदार कोण-युक्त हैं। ईरानी कला में महीन या बारीक रेखाओं का प्रयोग है।

२. **आलंकारिक विधान**—ईरानी शैली के चित्रों में भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा आलंकारिकता अधिक है। वस्त्रों की बनावट तथा पहरान में यथार्थता नहीं है अपितु आलंकारिक सौन्दर्य है। चित्रों में ईरानी वृक्षों को आलंकारिक योजना में प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति को घुमावदार रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया है।

३. **वर्ण-विधान**—ईरानी चित्रों में सपाट रंग लगाये गए हैं। ईरानी चित्रकार आकृति को उभारने और गोलाई प्रदान करने के लिये छाया प्रकाश का प्रयोग नहीं करते थे और केवल सपाट रेखांकन का प्रयोग ही करते थे। रंग अत्यधिक चटकीले तथा अमिश्रित होते थे। पृष्ठभूमि अधिकांश हल्के रंग से रंगी जाती थी।

४. **कोमलता**—ईरानी शैली में मानवाकृतियाँ बड़ी कोमल या नाजुक बनायी गई हैं। आकृतियों की गरदन पतली, सुराहीनुमा ही चित्रित की गई हैं और लम्बी, पतली लचकदार

[illegible] (आंखें) वाली स्त्रियाँ अंकित की गई है। ईरानी चित्रों में स्त्री की कोमलता की उपमा [illegible] रूप में दर्शायी गई है और पुरुष की उपमा प्रायः 'सरो' के वृक्ष से दर्शायी गई है।

५. **उद्यान चित्रण**–ईरानी चित्रों में उद्यान के चित्रण की सुमधुर कल्पना दिखाई पड़ती है।

६. **ज्यामितीय योजना**–ईरानी चित्रों में प्रकृति, मानवाकृतियों तथा भवनों आदि के [illegible] में यथार्थता नहीं है अपितु ज्यामितीय योजना को अपनाया गया है।

७. **हाशिये**–ईरानी चित्रों के चारों ओर हाशिये बनाने की प्रथा प्रचलित थी। चित्रों के हाशिये आलंकारिक अभिप्रायों, आखेट-दृश्यों, पशु-पक्षियों तथा पुष्प-पत्तियों से अलंकृत किये गए हैं। इन हाशियों में सुनहरी रंग का प्रयोग मनोरम है।

८. **भवन**–ईरानी चित्रों में भवन मेहराबदार, जालियों युक्त तथा फूल-पत्तों की नक्काशी के काम से अलंकृत बनाये गए हैं। भवनों की दीवारों में एक-एक ईंट तथा पच्चीकारी आदि को बड़ी बारीकी से दर्शाया गया है। इन भवनों में नीले, हरे एवं श्वेत आदि शीतल वर्णों का अधिक प्रयोग है। आकृतियों को इन भवनों में उभारने के लिये प्रायः इनके वस्त्रादि गहरे रंग से रंगे जाते थे और पृष्ठभूमि हल्के रंग से रंगी जाती थी।

९. **आकृतियाँ**–ईरानी शैली में मानवाकृतियों के चेहरे प्रायः गोल तथा पौने दो चश्म बनाये गए हैं, जिनमें छोटी आँखें, पतली-लम्बी नाक तथा पतले अधर वाले छोटे मुख-विवर का चित्रण किया गया है। चेहरे गोलाईयुक्त हैं और उनमें गठनशीलता का अभाव है, अतः फूले-फूले कपोल तथा गोल चिबुक दिखाई पड़ती है। चेहरे एक ही प्रकार से बनाये हैं।

१०. **वस्त्र**–ईरानी शैली में आकृतियों को प्रायः लम्बा लबादा या चोगा, पगड़ी तथा कुलहदार साफा पहने हुए चित्रित किया गया है।

११. **आकृति भेद**–स्त्री तथा पुरुष आकृतियों में रूप का अंतर दर्शाने के लिये केश-विन्यास, बालों तथा दाढ़ी-मूछों आदि से पृथकता दर्शायी गई है अन्यथा उनकी शारीरिक रचना में भेद नहीं दर्शाया गया है।

१२. **लेख**–ईरानी शैली के चित्रों में चित्रकारों के नाम तथा चित्र के विषय से सम्बन्धित विवरण तथा कविता आदि भी लेखांकित कर दी जाती थी। यह लेख चित्रित आकाश में या अन्य किसी भाग में एक आयताकार सफेद पट्टी बनाकर उसके ऊपर अंकित कर दिये जाते थे।

१३. **संयोजन**–ईरानी चित्रों में सरल वर्णात्मक शैली के संयोजन चित्रित किये गए हैं। प्राकृतिक दृश्यों में दो स्थलों को पृथक करने के लिए नालियाँ, क्यारियाँ तथा टीले या चट्टानें अंकित की गई है और भवनों के अनेक भागों को दीवारों से विभाजित करके दर्शाया गया है।

१४. **प्रकृति**–प्रकृति को स्वतंत्र रूप से चित्रित नहीं किया गया है। प्रकृति को पृष्ठभूमि में आलंकारिक रूप में चित्रित किया गया है।

बाबर तथा हुमायूँ के काल में जो ईरानी-शैली अपने मूल या अपरिवर्तित रूप में प्रचलित थी, अकबर के शासन काल में उस शैली से एक नवीन कलाशैली का जन्म हुआ जिसे 'मुगल-कला' कहते हैं।

भारत में मुगलों का प्रवेश—सर्वप्रथम बाबर भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य के संस्थापक के रूप में आया। उसने अपनी सैन्य कुशलता तथा तोपखाने के कारण भारत की शासन सत्ता को अपने हाथ में ले लिया। बाबर का नाम जहीरउद्दीन मोहम्मद था और उसके पिता का नाम उमरशेख था। उमरशेख फरगना प्रान्त का शासक था। बाबर ग्यारह वर्ष की आयु में पैतृक रूप से इस छोटे से फरगना राज्य का उत्तराधिकारी बना। जब वह १५११ ई०-में २८ वर्ष का हुआ तो उसको समरकंद का यह राज्य छोड़कर भागना पड़ा परन्तु इससे सात वर्ष पूर्व ही वह काबुल पर अधिकार स्थापित कर चुका था। १५०५ ई० में बाबर ने गज़नी पर भी अधिकार स्थापित कर लिया था और उसने सिंधु पर हमला किया परन्तु १५१६ ई० तक वह सिन्धु को पार न कर सका। १५२४ ई० में दौलत खाँ और आलम खाँ, जो दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी के चाचा थे, ने बाबर को लाहौर पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया, परन्तु उसको इस बार पुनः सैन्य संगठन करने के लिए काबुल लौटना पड़ा और १५२५ ईसवी में ही बाबर को सफलता प्राप्त हो सकी। पानीपत के महान युद्ध के पश्चात् बाबर को अप्रैल मास १५२६ ईसवी में विजय प्राप्त हुई और वह दिल्ली का शासक बन गया। इस प्रकार बाबर के द्वारा ही भारत में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी और इस वंश की मुगल संस्कृति तथा सभ्यता का भारत में सूत्रपात हुआ। बाबर पैतृक सम्बन्ध में तैमूर, से मातृ सम्बन्ध में चंगेज वंश से सम्बन्धित था। बाबर की माता-मही चंगेजवंशीय मंगोल जाति की महिला थीं, इस वंश का नाम इस महिला के मंगोलवंशीय होने के कारण ही, इस महिला के नाम पर 'मुगल-वंश' पड़ा।

मुगलों का कला प्रेम—मुगल शासकों ने भारतवर्ष में राज्य विस्तार के साथ ही सुव्यवस्था स्थापित की और देश में शान्ति तथा समृद्धि बढ़ने लगी। मुगल सम्राटों को अपने वंशजों के समान ही चित्रकला, उद्यान तथा भवन निर्माण में अधिक रुचि थी। मुगल शहजादों तथा सामन्तों की अपनी-अपनी चित्रशालाएँ होती थीं। बादशाह तथा शहज़ादे (युवराज) स्वयं भी चित्रकला का अभ्यास करते थे। सम्राट प्रायः उच्च पदाधिकारियों, सभासदों तथा सामन्तों को अपने शबीहचित्र भेंट स्वरूप प्रदान करता था। मुगल साम्राज्य तथा शासकों के साथ-साथ मुगल कला का उत्तरोत्तर विकास हुआ और राजकुमारों, दरबारियों तथा सरदारों ने इस चित्रकला को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया, किन्तु औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण मुगल साम्राज्य का ही पतन नहीं हुआ वरन् चित्रकला का वातावरण भी समाप्त हो गया।

बाबर का कला प्रेम—बाबर ने भारत का राज्य-सिंहासन १५२६ ई० में प्राप्त किया और १५३० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। जहाँ एक ओर वह नीति-कुशल शासक था

(१७)

और योद्धा था वहीं दूसरी ओर वह एक अच्छा लेखक तथा कवि भी था। उसने स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुज्के बाबरी' या 'बाबरनामा' नामक पुस्तक तुर्की भाषा में लिखी। इस आत्मकथा में उसने अपना जीता-जागता चित्र खींचा है। उसने बिहज़ाद नामक चित्रकार का रोचक वर्णन किया है, जिससे उसकी चित्रकला के प्रति रुचि और विषय की जानकारी दिखाई पड़ती है। उसने एक स्थान पर लिखा है कि—चित्रकारों या शिल्पकारों में बिहज़ाद का नाम प्रमुख है। वह एक कुशल चित्रकार था परन्तु दाढ़ी रहित युवा चेहरे ठीक नहीं बनाता था। बाबर ने एक अन्य चित्रकार शाहमुज़फ्फर के विषय में इस प्रकार लिखा है कि—'एक अन्य चित्रकार शाहमुज़फ्फर था। वह चित्रों में सादृश्य बहुत सुंदरता से ले आता था, परन्तु वह अधिक जीवित न रहा और उसकी उस समय मृत्यु हो गई जब वह ख्याति प्राप्त करने लगा था।' इन लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर की चित्रकला में स्वयं बहुत रुचि थी और उसने ईरान के इन चित्रकारों की कृतियाँ भी देखी थीं। बाबर ने समरकंद की मस्जिद का वर्णन किया है जिसमें उसने यह भी उल्लेख दिया है कि वह चीनी तस्वीरों से सजी थी।'

हुमायूँ—बाबर के पश्चात् हुमायूँ १५३० ई० में सिंहासन पर बैठा परन्तु उसका सारा जीवन लड़ाइयों में ही व्यतीत हुआ। बंगाल के शेरशाह तथा गुजरात के बहादुरशाह के कारण उसको भारत छोड़कर भागना पड़ा और उसको भारत के सिंहासन को छोड़कर देश-विदेश की खाक छाननी पड़ी। हुमायूँ ने अपने भाई कामरां से सहायता प्राप्त करनी चाही परन्तु वह काबुल लौट गया और उसने पंजाब शेरशाह के लिए छोड़ दिया। तब हुमायूँ ने मारवाड़ के राजा मालदेव का आश्रय ग्रहण किया और सिंध के सरदारों से भी उसने सहायता प्राप्त की। जब वह अमरकोट के निकट सिन्ध के सरदारों से सहायता प्राप्त करने के लिए इधर-उधर भटक रहा था तो उसके पुत्र मोहम्मद जलालउद्दीन अकबर का जन्म २३ नवम्बर १५४२ ईसवी में हुआ। इसके पश्चात वह खानदेश होता हुआ १५४७ ई० में ईरान और फिर फारस के शाह की शरण में पहुँचा। यहाँ १५५५ ईसवी के आरंभ में हुमायूँ के शिया मत ग्रहण करने के पश्चात् उसको पूर्ण सहायता प्राप्त हुई और उसने पुनः अपना खोया हुआ दिल्ली का राज्य बैरम खाँ जैसे योग्य सेनापति की सहायता से प्राप्त कर लिया। परन्तु १५५७ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गई और वह केवल कुछ मास ही शासन कर सका।

हुमायूँ का कला प्रेम—हुमायूँ को अपने पिता के समान साहित्य तथा कला से प्रेम था।' हुमायूँ अपनी कलाप्रियता तथा उदारता का अपने अल्प शासनकाल में युद्धों में उलझा रहने के कारण प्रदर्शन न कर सका परन्तु फिर भी जब वह वनवास काल में इधर-उधर भटक रहा था तब भी वह अपने साथ सचित्र पुस्तकें रखता था, जिससे उसका चित्रकला और साहित्य के प्रति गहरा प्रेम प्रकट होता है। एक बार जब वह सिन्ध और [illegible] की ओर से ईरान जा रहा था तो उसके साथ चित्रकार भी थे। इस यात्रा में एक

दिन जब वह खेमे में बैठा था तो एक सुंदर कबूतर वहीं आ गया। हुमायूँ ने उसको पकड़कर उसके पंख काटे और चित्रकारों से तस्वीर बनवाकर उसको छोड़ दिया।

१५४७ ई० में हुमायूँ जब शाहतहमास्प के दरबार में सहायता के लिए ईरान पहुँचा तो उसका दो महान ईरानी चित्रकारों—मीर सैय्यदअली 'जुदाई' और ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी' से परिचय हुआ था। ये दोनों चित्रकार शाहतहमास्प के दरबार में थे। हुमायूँ ने इन चित्रकारों से अपने साथ भारत चलने को कहा परन्तु उस समय ये चित्रकार हुमायूँ के साथ न आये। कुछ मास के पश्चात जब कन्धार तथा काबुल पर १५४७ ई० में हुमायूँ का अधिकार स्थापित हो गया तो ये दोनों चित्रकार उसकी सेवा में आ गये और हुमायूँ ने उनको दरबारी चित्रकार नियुक्त कर लिया और इनकी अध्यक्षता में स्वयं हुमायूँ तथा बालक अकबर ने चित्रकला का अभ्यास किया।[8] अमीर हम्ज़ा कहानी में मोहम्मद के चाचा अमीर हम्ज़ा की देश-देशान्तर विजय की आश्चर्यजनक साहसिक कहानी का वर्णन था। इस कथा का चित्रण सम्भवतः हुमायूँ के संरक्षण में किशोर अकबर के चरित्र निर्माण के लिए आरम्भ हुआ। ये चित्र पूर्णतया फारसी शैली में तैयार किये गए परन्तु परवर्तीकाल में इनमें भारतीय पोषकों हिन्दू मूर्तियों, भारतीय ग्राम्य दृश्यों तथा जीवन का समावेश भी हो गया।[9] ये चित्र सूती कपड़े पर बनाये गए, जिनका आकार ६८×५२ सेंटीमीटर था।[10] इन चित्रों में से अनेक अभी भी साउथ केंसिंगटन म्युजियम तथा ब्रिटिश म्युजियम में सुरक्षित हैं।

अकबर—१५५७ ई० में अकबर अपने पिता हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात लगभग तेरह वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठते ही उसको कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं और १५७० ई० के पश्चात ही उसको सांस्कृतिक उत्थान में योग देने का अवसर प्राप्त हुआ। अकबर ने 'दीनइलाही' धर्म चलाकर अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया। उसने मुसलमानों के धार्मिक कट्टरपन को नहीं माना और चित्रकला जो मुसलमान धर्म में निषिद्ध थी, की उन्नति के लिए सतत् प्रयत्न किये। उसने स्वयं अम्बर या अम्बेर (आमेर) के राजा बिहारीमल की पुत्री राजकुमारी जोधाबाई से विवाह किया और उसको धार्मिक स्वतंत्रता दी। इस साम्राज्ञी के लिए अन्तःपुर में वैष्णवधर्म के उपदेश देने की स्वतंत्रता थी। इस राजपूत रानी का पुत्र सलीम ही सिंहासन का उत्तराधिकारी बना। इस प्रकार से अकबर ने संधि की नीति को अपनाया और जहाँ उसने राजपूतों की संस्कृति पहनावे आदि से बहुत कुछ लिया, वहीं दूसरी ओर उसने उनके जीवन को बहुत कुछ प्रभावित भी किया। अकबर के कई विश्वसनीय और सहायक हिन्दू थे। जयपुर के राजा भगवानदास और राजा मानसिंह ने अकबर की ओर से राजपूतों से भयानक युद्ध किये। अकबर के दरबार में 'नवरत्न' अर्थात् नौ उच्चकोटि के विद्वान या महान व्यक्ति थे। इन नवरत्नों में अबुल फज़ल, फैजी, तानसेन, बीरबल, अब्दुलरहीम खानखाना, टोडरमल, राजा मानसिंह, बिहारीमल तथा भगवान दास थे। इन नवरत्नों में अधिकांश हिन्दू व्यक्ति थे। अकबर के दरबार में अधिकांश चित्रकार कायस्थ, चितेरा, खाती तथा कहार जाति के थे।[11] अकबर ने साहित्यकारों

रेखाचित्र सं० १६

सम्राट अकबर—१५५६ ई० (मुगल शैली)

दार्शनिकों, संगीतकारों तथा कलाकारों आदि में विशेष रुचि दिखाई जिसके फलस्वरूप अकबर के समय में प्रत्येक कला को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

अकबर का कला प्रेम—अकबर के शासनकाल तक उत्तरी भारत में एक विशाल और समृद्ध साम्राज्य स्थापित हो चुका था। इस समय भारत पुनः प्रगति के लिए तत्पर हो चुका था। ऐसे शान्त और सुखद वातावरण में ललित कलाओं का विकास होता है अतः चित्रकला भी मुगल दरबार के राजसी वैभव और राज्य विस्तार के साथ विकसित हुई। मुगल दरबार का वैभव भिन्न-भिन्न कलाकारों, साहित्यकारों, संगीतकारों तथा राजपूत सरदारों को आकर्षित कर रहा था। सम्राट अकबर की कलाप्रियता के कारण कलाकारों एवं विद्वानों को दरबार में समादर और सुखद आश्रय भी प्राप्त हो रहा था। अकबर की चित्रशाला में लगभग छः गुजराती चित्रकार थे। इससे स्पष्ट है कि उत्तम आश्रय प्राप्त करने के लिए कुशल चित्रकार मुगल दरबार की ओर आकर्षित हो रहे थे। अकबर ने भवन-कला

तथा चित्रकला को विशेष महत्त्व प्रदान किया और उसने अपनी उदारता से इनको एक नवीन रूप प्रदान किया।

वास्तव में अकबर की रुचि युवाकाल से ही चित्रकला की ओर थी। पहले बताया जा चुका है कि अकबर ने भवन-कला तथा चित्रकला का अभ्यास किया था। जहाँगीर के आत्मचरित्र 'तुज़्के जहाँगीरी' से भी इस बात की पुनः पुष्टि होती है। जहाँगीर ने एक रोचक घटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि अकबर की ताजपोशी के समय (सिंहासन पर आसीन होने के समय) जब हेमू ने विद्रोह किया, और अन्त में उसको पराजित कर जब बंदी बनाकर अकबर के सम्मुख लाया गया तो अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना के पिता बैरमख़ाँ ने सम्राट से प्रार्थना की कि इस काफिर को मारकर गिज़ा (धर्मयुद्ध का यश) को प्राप्त करें। इस पर अकबर ने कहा कि–''मैं तो इसे पहले ही टुकड़े-टुकड़े कर चुका हूँ। जब मैं काबुल में ख़्वाजा अब्दुस्समद 'शारीकलम' से चित्रकारी सीखता था तो एक दिन मेरी तूलिका (कलम) से एक ऐसा चित्र बन गया जिसके अंग अस्त-व्यस्त या कटे-फटे थे। पास बैठे एक व्यक्ति ने जब पूछा कि यह किसकी सूरत है तो मेरे मुँह से अकस्मात उत्तर–'हेमू' निकल पड़ा।''

अकबर के समय में चित्रकारों का स्थान–अकबर ने चित्रकारों तथा चित्रकला में अत्यधिक रुचि दिखाई। अब्बुल फज़ल ने 'आइनेअकबरी' में लिखा है कि बादशाह स्वयं अपनी शबीह या अपना मुखाकृतिचित्र बनवाने के लिये बैठता था और उसने अपने दरबारियों के चित्र भी बनवाये।' अकबर ने एक बार स्वयं यह भी कहा था कि–'ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो चित्रकला से घृणा करते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति मेरे स्नेह-भाजन नहीं है। धार्मिक नियमों के अंधविश्वासी चित्रकला के घातक शत्रु हैं परन्तु अब उनके नेत्र सत्य का अनुभव करते हैं।' आईनेअकबरी के लेखक अब्बुल फज़ल ने यह भी विवरण दिया है कि अकबर ने सौ से अधिक चित्रकारों की नियुक्ति की, जो फतेहपुर सीकरी के एक विशेष भवन में कार्य करते थे।" यह कार्य १५७० ई० से १५८५ ई० तक इस चित्रशाला में सुचारु रूप से चलता रहा। चित्रशाला के निरीक्षक चित्रकारों के इस भवन का सप्ताह में एक बार निरीक्षण करते थे। ये निरीक्षक चित्रकारों की कृतियाँ सम्राट के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। सम्राट चित्रकारों की कार्यकुशलता के अनुसार उनको इनाम देता था और उनका वेतन बढ़ा दिया जाता था।" इस चित्रशाला के अध्यक्ष उस्ताद मीर सैय्यद अली तथा ख़्वाजा अब्दुस्समद थे। चित्रकारों के लिए दरबार में उच्च पद दिये जाते थे और चित्रकार मनसबदार हुआ करते थे। उच्चकोटि के चित्रकारों को ५०० मनसबदारी तक के ओहदे प्रदान किये जाते थे। अब्दुस्समद की ५०० मनसबदारी के पद पर नियुक्ति हुई परन्तु उसका पद छोटा होते हुए भी दरबार में उसकी कला के कारण उसका विशेष सम्मान था। १५७३ ई० में जब अकबर ने गिने-चुने २७ सरदारों के साथ अहमदाबाद पर तूफानी आक्रमण किया तो उसके दल

में तीन चित्रकार थे। अकबर ने यह धावा राजस्थान पार करके गर्मी के मौसम में साणीयों (ऊँटनियों) पर यात्रा करके किया था और ६०० मील की यात्रा ११ दिन में तय की थी। इस सरनाल के युद्ध में तीन चित्रकार (१) सौंवलदास, (२) जगन्नाथ तथा (३) तारानाथ साथ गये थे। सौंवलदास ने इस युद्ध का मार्मिक चित्र बनाया था।[१२]

अकबर ने अपने चित्रकारों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए उच्च पद तथा इनाम ही नहीं बल्कि उपाधियाँ भी प्रदान की और उसने अनेक चित्रकारों को 'नादिर उलमुल्क' (देश का आश्चर्य) तथा हुमायूंनसाही (राज्य का शुभ या मंगलमय) की उपाधियों से विभूषित किया।

अकबर के दरबारी चित्रकार

'वाकायत-ऐ-बाबरी' की अकबरकालीन प्रति में उन्नीस उच्चकोटि के हिन्दू और तीन उच्चकोटि के मुसलमान चित्रकारों का उल्लेख है, परन्तु 'आईनेअकबरी' में तेरह उच्चकोटि के हिन्दू और चार मुसलमान चित्रकारों का वर्णन है।[१३] अकबर के समय में भिन्न-भिन्न देशों से चित्रकार मुगल दरबार की ओर आकर्षित होकर आ रहे थे। आइनेअकबरी के अनुसार इस समय के कलाकारों में कलमाक के फर्रुख, अब्दुस्समद (शीराजी) तथा तब्रेज के मीरसैय्यद अली से यह स्पष्ट है कि विभिन्न कलाकार 'सुदूर देशों' से मुगल दरबार में राज-आश्रय ग्रहण करने के लिए आ रहे थे। जहाँगीर के समय में समरकन्द से भी चित्रकार आये। अकबर के समय में हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकारों में कोई भेदभाव न था क्योंकि 'आईनेअकबरी' में अब्दुलफज़ल ने लिखा है कि 'यह सत्य है कि हिन्दुओं के चित्र हमारी चित्रकला को मात करते हैं। वास्तव में सम्पूर्ण संसार में उनके जैसे चित्रकार बहुत कम मिलते हैं।'[१४] आइनेअकबरी के अनुसार, अकबर की चित्रशाला के चित्रकार कायस्थ, चितेरा, सिलावट तथा खाती जाति के थे। इस समय के तेरह हिन्दू चित्रकारों के नाम प्राप्त हैं, जिनमें दसवन्त, बसावन, केशव लाल, मुकुंद, मधु, जगन, महेश, तारा, सांवल, खेमकरन, हरवंश तथा राम थे। 'दसवन्त' कहार जाति का था। वह पालकी उठाया करता था और दीवार पर लिखाई भी करता था। एक बार सम्राट अकबर ने उसको दीवार पर लिखते हुए देखा तो उसको सम्राट ने अपनी सेवा में रख लिया। आगे चलकर दसवंत एक कुशल चित्रकार सिद्ध हुआ।[१५] मिस्किन भी अकबर के दरबार में एक निपुण पक्षी-चित्रकार था। 'बसावन' चित्र की पृष्ठिका बनाने के काम में निपुण था। अब्दुलफज़ल ने लिखा है कि, "कई ऐसे चित्रकार तैयार हो गये है जो बिहज़ाद और यूरोप के चित्रकारों से टक्कर लेते हैं।"[१६] अकबर के दरबार में जब कोई अतिथि आता तो उसको वह अपनी चित्रशाला भी दिखाता था। जहाँगीर ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है कि, 'वह अब्दुस्समद को बड़े सम्मान से रखता था, अकबर ने उसको १५५७ ई० में अपनी टकसाल का अधिकारी बना दिया। जगन्नाथ, धरमदास, नन्द ग्वालियरी, भीम गुजराती तथा शंकर भी इस समय के अच्छे चित्रकार थे।'

अकबर के काल के प्रमुख चित्रकार

अकबर के काल में जिन कलाकारों ने कला विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया उनमें चार कलाकारों के नाम प्रमुख है। ये चित्रकार १. मीर सैय्यद अली, २. ख्वाजा अब्दुस्समद शीराज़ी, ३. दसवंत तथा ४. बसावन थे। इन चित्रकारों ने ही मुगल शैली को जन्म दिया।

मीर सैय्यद अली

मीर सैय्यद अली 'जुदाई' अकबर के दरबार का मीर मुसव्विर (मुख्य चित्रकार था) वह सफवी शैली या फारसी-ईरानी शैली का कुशल चित्रकार था। उसका जन्म सोलहवीं शताब्दी में फारस के तब्रेज नामक नगर में हुआ था। उसके पिता सुल्तानिया के शाह के दरबार में मीर मुसव्विर (प्रधान चित्रकार) थे। अतः किशोर अवस्था में ही मीर सैय्यद अली ने चित्रकला तथा लिपि लेखन कला-सुलेखन लिपि या खतेतोहरा का उत्तम अभ्यास कर लिया था। काज़ी अहमद नामक लेखक ने १५९६-९७ ई० में रचित अपने ग्रंथ में लिपिकारों की नामावली में मीर सैय्यद अली का नाम दिया है। अकबर के दरबार के प्रसिद्ध लेखक अबुलफ़ज़ल ने अपने ग्रंथ 'आईनेअकबरी' में इसके पिता का नाम मीर मंसूर बताया है। १५४० ई० में हुमायूँ जब शाहतहमास्प के दरबार में फारस (ईरान) पहुँचा तो उसकी भेंट वहीं पर मीर सैय्यद अली से हुई और उसने मीर सैय्यद अली को अपने साथ भारत आने के लिए निमंत्रित किया परन्तु सैय्यद अली उस समय निर्वासित राजकुमार हुमायूँ के साथ नहीं आया। परन्तु जब इसी वर्ष हुमायूँ ने अपने भाइयों को पराजित करके काबुल तथा कन्धार पर अपना अधिकार कर लिया तो मीर सैय्यद अली तथा ख्वाजा अब्दुस्समद कुछ समय पश्चात् हुमायूँ के संरक्षण में काबुल आ गये। ये कलाकार निश्चित रूप से १५५० ई० तक काबुल आ गये थे। इन चित्रकारों ने काबुल में अमीर हम्ज़ा की दास्तान पर आधारित चित्रों का निर्माण आरंभ कर दिया था जो अकबर के समय में पूर्ण हुआ। इस कार्य में अनेक हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकारों की सेवाएँ भी ग्रहण की गई थी।

मीर सैय्यद अली के बहुत कम चित्र ही आज प्राप्त है। इन चित्रों से उसकी प्रभावशाली सरल कला शैली का परिचय प्राप्त होता है और ये चित्र तब्रेज की ईरानी शैली के है। उसके चित्रों में आकृतियों आदि की व्यवस्था संयोजन संतुलित और सुनियोजित है। इसके चित्रों में वातावरण आकर्षक और प्रकृति की सुषमा आलंकारिक है तथापि उसने बारीकी और सूक्ष्म चित्रण से आकृतियों आदि में वास्तविकता लाने की चेष्टा की है। उसने अपने चित्रों में दैनिक लोक जीवन से सम्बन्धित विषयों का अंकन किया है। उसने राजसी दरबारी जीवन की अपेक्षा नगर एवं ग्रामीण दृश्यों का चित्रण अधिक किया है। उसकी मानवाकृतियों की रचना बिहज़ाद शैली की है और आकृतियाँ लम्बी, पतली तथा लता के समान लचकदार है। उसकी आकृतियों में गरदन लम्बी-पतली सुराहीदार और चेहरे लम्बे बनाये गए है।

जब वह अकबर की दरबारी चित्रशाला में मीर मुसव्विर नियुक्त हुआ तो उसकी देखरेख में गुजराती तथा राजस्थानी चित्रकार काम करते थे। वह इन स्थानीय चित्रकारों से प्रभावित हुआ था। उसके प्रमुख चित्रों में—'गाय का वध करते जहाक', 'लैला के सम्मुख जंजीरों में बंधा मजनूं', 'बहराम तथा गड़रिया', 'मजनूं का जन्म', 'जामीकुल-हफ्त-औरंग चित्रावली' तथा 'पिता मंसूर का व्यक्ति चित्र' है। हम्ज़ा नामा के प्रारंभिक चित्रों पर उसकी शैली का प्रभाव माना जाता है इसी कारण मीर सैय्यद अली को मुगल कला शैली का 'जन्मदाता' भी माना जाता है।

ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी'

मीर सैय्यद अली के समान ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी' भी अकबर के दरबार का मीर मुसव्विर था। वह भारत में मुगल शैली की चित्रकला के जन्मदाताओं में मीर सैय्यद अली के समान ही एक था। आइनेअकबरी में उसके सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है। आइनेअकबरी के अनुसार उसकी मधुर एवं कोमल चित्रशैली के कारण उसको 'शीरीकलम' की उपाधि प्रदान की गई थी। उसका जन्म ईरान के प्रसिद्ध नगर शीराज़ में हुआ था। शीराज ईरान में अपनी कला और कलाकारों के लिये प्रसिद्ध था और शीराज नगर दूर-दूर तक एक कला केन्द्र के रूप में सुविख्यात था। ख्वाजा अब्दुस्समद का पिता फारस के राजघराने के दरबार में मंत्री था। १५४५ ई० में जब हुमायूं फारस की राजधानी तब्रेज नगरी में था तो ख्वाजा अब्दुस्समद उसके पास गया और उसने परिचय प्राप्त किया। हुमायूं ने उसे अपने साथ भारत चलने के लिये निमंत्रित किया लेकिन उस समय वह उसके साथ नहीं आया। १५४७ ई० में हुमायूं की काबुल विजय के पश्चात् १५४९ ई० में वह हुमायूं के आश्रय में काबुल दरबार में पहुँच गया। तैमूरनामा के अनुसार यहीं पर स्वयं हुमायूं तथा किशोर शहज़ादे (युवराज) अकबर ने उससे चित्रकला की शिक्षा ग्रहण की। १५५६ ई० में अकबर ने अपने सिंहासनारोहण के पश्चात् ख्वाजा अब्दुस्समद को विशेष सम्मान दिया। इस समय से उसकी कलाशैली में उत्तरोत्तर परिमार्जन, निखार और विकास आया। इसकी कृतियां में बाह्य रूपों के साथ-साथ आन्तरिक भावना तथा आत्मा मुखरित होने लगी। वह अकबर की चित्रशाला का प्रधान कलाशिक्षक अर्थात उस्ताद मुसव्विर भी था और उसके शिष्य उत्तम कलाकार सिद्ध हुए। उसके शिष्यों में दसवन्त उत्तम चित्रकार था।

पर्सी ब्राउन की यह धारणा है कि हुमायूं के संरक्षण में अब्दुस्समद ने मीर सैय्यद अली की दास्ताने अमीर हम्ज़ा के चित्रों का निर्माण किया था।

अकबर अब्दुस्समद को केवल एक श्रेष्ठ चित्रकार ही नहीं समझता था अपितु उसका दरबार में उच्च सम्मान था। अपने पिता हुमायूं का समकालीन तथा सहायक होने के कारण अकबर उसको आदर और सम्मान से रखता था। यद्यपि वह अकबर के दरबार में चार सौ मनसबदारी के पद पर नियुक्त किया गया था परन्तु उसका दरबार में सम्मान बहुत अधिक था। उसके पुत्र शरीफ को अकबर ने अपने पुत्र युवराज (शहज़ादा) सलीम का

[illegible]

[illegible]

दसवन्त

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दर्शाई है। उसकी आकृतियों के चित्रण में परिप्रेक्ष्य तथा दूरी का आभास होता है। उसके चित्रों में केन्द्रीय आकृति के उचित संयोजन से संतुलन स्थापित किया गया है। उसके चित्रों में हिन्दू परम्पराओं की प्रबलता के साथ-साथ यूरोपीय कला तथा आकृति निर्माण का प्रभाव भी है।

बसावन

अकबर के दरबारी चित्रकारों में बसावन एक कुशल चित्रकार था और उसको दरबार में अपनी कला प्रतिभा दर्शाने के कारण उचित महत्त्व तथा सम्मान प्राप्त था। उसने लगभग एक सौ से अधिक सुंदर तथा उत्कृष्ट चित्रों की रचना की। परन्तु खेद है कि उसके जीवन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। वह हिन्दू था अतः उसने हिन्दू जीवन की अपने चित्रों में झाँकी प्रस्तुत की है। उसने मीर सैय्यद अली तथा ख्वाजा अब्दुस्समद की देख-रेख में मुगल शैली की शिक्षा ग्रहण की। अब्बुलफज़ल ने आइनेअकबरी में दसवन्त के परिचय के पश्चात् बसावन का उल्लेख करते हुए बसावन की बड़ी तारीफ की है। इन दोनों चित्रकारों ने तैमूरनामा तथा रज़्मनामा के चित्रों का निर्माण किया है। बसावन का पुत्र मनोहर जहाँगीर के दरबार में मुगलशैली का प्रसिद्ध चित्रकार था।

बसावन के चित्रों में बहारिस्ताने-जामी पर आधारित एक चित्र में शेखअबू-उल-कस्साब को एक दरवेश (संत) के दर्शन करते हुए अंकित किया गया है। यह दोनो व्यक्ति बातचीत करते हुए एक मण्डप में चित्रित किये गए हैं। दरवेश शेख की बात को सुनते हुए अपनी सुई में धागा डालते हुए दर्शाया गया है। मण्डप के विवरण सुंदरता से अंकित हैं और मण्डप के अंकन में यूरोपीय परिप्रेक्ष्य का प्रयोग नहीं है। अग्रभूमि में गठीले तने वाला एक पुराना भारी घना वृक्ष चित्रित है। इन दोनों व्यक्तियों की मुखाकृतियों को बारीकी (सूक्ष्मता) से लिखा गया है और उनमें चरित्र चित्रण की यथार्थता झलकती है। आकृतियों की मुद्राएँ तथा भंगिमाएँ भावपूर्ण तथा स्वाभाविक हैं। उसकी आकृतियों में वस्त्रों की बनावट पर यूरोपीय कला का प्रभाव है और आकृतियों में गठनशीलता तथा छाया-प्रकाश का प्रयोग उत्तम है उसने लगभग ४० वर्ष तक चित्र निर्माण किया और बड़ी संख्या में चित्र बनाये। उसके साथी सहायक-कलाकारों में भीम गुजराती तथा मिस्किन चित्रकार थे।

अब्बुलफज़ल के अनुसार बसावन ने चित्र में पृष्ठभूमि निर्माण, मुखाकृतियों की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण तथा रंगों का सम्मिश्रण यथा रूप किया है।

अकबर के काल में कला-सामग्री

'आइनेअकबरी' में अब्बुलफज़ल ने लिखा है कि–'चित्र बनाने की सामग्री में बहुत उन्नति हुई है, रंगों बनाने की पद्धति भी सुधर गई है, जिससे चित्रों की तैयारी में सुविधा हो गई। अकबर के राज्य में उत्तम प्रकार के रंग और कागज़ का निर्माण भी होने लगा था। पहले कागज़ ईरान

से मंगवाया जाता था और चित्रकार (१) ईरानी तथा (२) इस्फहानी कागज़ चित्र बनाने के लिए पसंद करते थे। सियालकोट (पंजाब) में कागज़ बनाने का एक मुग़ल कारखाना स्थापित किया गया और इस स्थान के नाम पर वहाँ का बना (३) 'सियालकोटी-कागज़' प्रसिद्ध हो गया। अकबर के समय में चित्रों के लिए उपयुक्त आकार का कागज़ कठिनाई से प्राप्त होता था। अतः चित्रकार छोटे-छोटे कागज़ों को बड़ी सावधानी से जोड़ते थे।" अबुलफ़ज़ल लिखता है–'धीरे-धीरे अनेक प्रकार के कागज़ प्रचलित होने लगे थे और उनका उत्पादन होने लगा। (१) सन से बने 'सनी कागज़' (२) रेशम से बने 'रेशमी' या 'हरीरी कागज़' (३) बाँस से बने 'बाँसी कागज़' तथा (४) टाट से बने 'तुलोट-कागज़' का प्रचलन भी हो गया। दौलताबाद में भी कागज़ का बड़ा उद्योग विकसित हो गया था। परन्तु सुदूर दक्षिण तक कालान्तर में भी हिन्दुस्तान (उत्तर-भारत) से कागज़ मंगाया जाता रहा। दक्षिण में सियालकोट के बने कागज़ मुग़ली-कागज़ के नाम प्रसिद्ध थे और चित्रकार इन कागज़ों को पसंद करते थे। मैसूर के चित्रकार स्थानीय कागज़ (खरदी कागज़) का प्रयोग करते थे। ये सब कागज़ सफेद नहीं बल्कि हल्के भूरे रंग के थे। इस समय अनेक कागज़ प्रचलित थे, इनमें निम्न कागज़ लोकप्रिय थे–(१) दौलताबादी कागज़, (२) खताई कागज़ (चीन के खता नगर में बना कागज़), (३) आदिल शाही, (४) सुल्तानी (समरकंद का कागज़), (५) निजामशाही, (६) गौनी (तब्रेज़ में बनने वाला पीला कागज़), (७) गुब्बार पानी लगा कागज़, (सियालकोटी कागज़)।

चित्रकार की तूलिका को 'कलम' कहते थे और चित्रकार को कलम-करतार कहते थे। तूलिकाएँ गिलहरी, ऊँट, बकरे, भैंसे अथवा बिल्ली के बालों से बनाई जाती थी।

अकबर का अमीरहम्ज़ा की कहानी के प्रति प्रेम और मुग़ल शैली का जन्म

नसीरउलउमरा के अनुसार–''अकबर अमीरहम्ज़ा की कहानी का बहुत शौकीन था। इस विशद् कहानी में ३६० कहानियाँ थीं। वह इन कहानियों में इतनी अधिक दिलचस्पी लेता था कि अन्तःपुर में वह इन कहानियों को एक कथावाचक के समान सुनाया करता था। उसने इस दास्तान की आश्चर्यजनक एवं रोचक घटनाओं को आरम्भ से अन्त तक चित्रित कराया।" उसने इस विशाल कथा को १२ खण्डों में विभाजित कराया। प्रत्येक खण्ड में एक सौ जुज़ (folios) थे और प्रत्येक जुज़ एक ज़िरा (zira) लम्बा था। प्रत्येक जुज़ में दो चित्र थे और प्रत्येक चित्र के सम्मुख भाग पर काज़वीन (मुंशी) ख्वाजा अताउल्ला की सुंदर लेख में विवरण लिखा हुआ था। तब्रेज़ निवासी नादिर उल मुल्क हुमायूँनशाही सैय्यदअली जुदाई की देखरेख में पहले बिहज़ाद के समान तूलिका या कलम वाले चित्रकार इस पुस्तक के तैयार करने के लिए नियुक्त किये गए और बाद में शीराज़ के ख्वाजा अब्दुस्समद की देख-रेख में यह कार्य चलता रहा। अबुलफ़ज़ल के अनुसार–''किसी ने भी इस पुस्तक के समान दूसरा जवाहर नहीं देखा होगा और न किसी राजा के पास इसके बराबर कोई मूल्यवान वस्तु थी। इस समय यह पुस्तक

...पुस्तकालय' में है।''[५] उपरोक्त पचास सहायक चित्रकारों में अधिकांश भारतीय तथा अन्य फारसी चित्रकार रहे होंगे। इन कृतियों में कुछ ही अंशों में फारसी प्रभाव है और किसी सीमा तक भवन, पहनावा, वृक्ष आदि भारतीय हैं।" इन चित्रों पर यूरोपीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। एक ही चित्र में फारसी या ईरानी, भारतीय तथा यूरोपियन प्रभाव दिखाई पड़ता है, यही मुगल शैली है। ये चित्र मुगल शैली के आरम्भिक उदाहरण हैं। इन चित्रों में हुमायूँ के समय की फारसी शैली का प्रभाव अभी भी अधिक दिखाई पड़ता रहा। परन्तु बाद में अकबर ने भारतीय जीवन का समावेश किया और १५७० ई० के पश्चात् अकबर ने शान्ति से चित्रकला को अत्यधिक समय और संरक्षण प्रदान किया। आइनेअकबरी में अब्बुलफजल लिखता है कि–''सम्राट ने अपने यौवन-काल के आरम्भ से ही चित्रकला के लिए बहुत रुचि प्रदर्शित की और श्रीमंत (अकबर) ने उसको मनोरंजन और ज्ञान का साधन माना।'' अकबर ने फारसी ही नहीं बल्कि हिन्दू महाकाव्यों–'महाभारत', 'रामायण', 'योगवशिष्ठ-रामायण' आदि ग्रंथों के आधार पर भी चित्र बनवाये और उनका फारसी भाषा में अनुवाद कराया। इसी समय महाकवि केशव की 'रसिकप्रिया' पर अतुलनीय चित्र बनाये गए।

अकबर की चित्रशाला में हिन्दू तथा मुसलमान कारीगर, चित्रकार तथा मुंशी कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं की भारतीय चित्रकला तथा मुसलमानी तिमरुदी या फारसी-ईरानी कला का पूर्ण सम्मिश्रण होता चला गया। अकबर की चित्रशाला में बहुत से भारतीय चित्रकारों को फारसी चित्रकला सिखाई गई और इस आदान-प्रदान से गुजराती, राजस्थानी और अजन्ता की भित्तिचित्र परम्परा का ईरानी या फारसी शैली पर प्रभाव पड़ा और यह भारतीय ईरानी या भारतीय-तिमरुदी या भारतीय-फारसी शैली मुगल शैली में परिणत हो गई। इसमें भारतीय प्रकृति और मुगल-दरबार की अपनी निजी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं, और किसी प्रकार भी इसको फारसी शैली की भारतीय शाखा नहीं मानना चाहिए, (देखिए छायाफलक संख्या-3) मुगल कला की उपलब्धियाँ फारसी शैली से आगे बढ़ गईं और उसका अपना मौलिक इतिहास, विकास-क्रम और महत्त्व है और उसमें भारतीय भावना और वातावरण है।

अकबर के समय में तैयार की गई 'बाबरनामा' की एक सचित्र प्रति 'राष्ट्रीय-संग्रहालय' नई दिल्ली में सुरक्षित है। इस प्रति के जुज़ ११६ में चौबीस-चित्र है, जिन पर खेम का लेख है, इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति अकबर के शासन-काल के बयालीसवें वर्ष अर्थात् १५९८ ई० में तैयार की गई। इस प्रति में कुल १८३ चित्र हैं और इस प्रति में निम्न ४८ चित्रकारों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने इस प्रति में चित्र बनाये हैं–

(१) अनन्त, (२) असी, (३) असी कहाँर, (४) इब्राहीम कहाँर, (५) केशव कहाँर, (६) खेम कहाँर, (७) खेमकरन, (८) गोविंद, (९) जगन्नाथ, (१०) जमशेद, (११) जमाल, (१२) तुलसी, (१३) दौलत (१४) दौलत खानज़ादा (१५) धनराज, (१६) धन्नू, (१७)

धर्मदास, (१८) नकी खानजादा, (१९) नन्द कालन, (२०) नन्द कुंवर, (२१) नरसिंह, (२२) नाना, (२३) पयाग, (२४) पारस, (२५) प्रेम, (२६) फत्तू, (२७) फर्रुख बेग, (२८) बेदी, (२९) बनवारी खुर्द, (३०) भगवान, (३१) भवानी, (३२) माधु, (३३) मीर गुजराती, (३४) भूरा, (३५) मनरा, (३६) मंसूर, (३७) महेश, (३८) माधो, (३९) मिस्किन, (४०) मोहम्मद कश्मीरी, (४१) लक्ष्मण, (४२) लौंग, (४३) शंकर, (४४) शिवदास, (४५) सरवण, (४६) सूरदास, (४७) हजारा तथा (४८) हुसैन।" कई चित्रों पर चित्रकारों का नाम नहीं है। इसी प्रति पर शाहजहाँ के हस्ताक्षर हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि यह प्रति शाही पुस्तकालय की होगी। इस प्रति के चित्रों में आकृतियों की बनावट तथा एक चश्म चेहरे फारसी शैली के हैं, परन्तु सपाट रंग का प्रयोग और लाल रंग की अधिकता भारतीय शैली की है इन चित्रों में पहनावा अकबर कालीन है।

धीरे-धीरे मुगल शैली में प्रचलित फारसी विषय जैसे 'शीरी-फरहाद', 'लैला-मजनूं' तथा फ़ारसी कवि निज़ामी के काव्य का स्थान भारतीय काव्य तथा कथाओं ने ग्रहण कर लिया। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि युवराज दानियाल (१५७२-१६०४ ई०) ने कहा था कि "फरहाद तथा शीरी की प्रेम-गाथा पुरानी हो चुकी है यदि हम उसको पढ़ते हैं तो उसको हमारे निजी दर्शन और श्रवण के अनुरूप होना चाहिए।" (मुज-ऊ-जुदाज नाउई) इस वाक्य से उस समय की मुगल-सभ्यता की पूर्ण झाँकी मिल जाती है।

जहाँगीर-चित्रकला के जिस संस्थान का बीजारोपण अकबर ने किया था वास्तव में वह जहाँगीर (१६०५-१६२७ ईसवी राज्यकाल) के समय में पूर्ण यौवन और विकास को प्राप्त हुआ। जहाँगीर उदार, 'हयईए' प्रेमी, लेखक, चित्रकार और योग्य न्यायप्रिय शासक था। उसने अपनी आत्मकथा 'तुजके जहाँगीरी' लिखी है जो एक उच्चकोटि की स्मृतिकथा है।

जहाँगीर की चित्रकला के प्रति रुचि—उसने अपने युवाकाल में ही चित्रशाला को संरक्षण दिया और अपने चित्रकार नियुक्त किये थे। उसकी चित्रशाला में अनेक चित्रकार वही थे जो अकबर की चित्रशाला में कार्य कर चुके थे। सम्राट ने स्वयं अपनी आत्मकथा में कई चित्रकारों तथा चित्रों का उल्लेख किया है। साथ ही सम्राट ने अपने चित्रकला के प्रति प्रेम और ज्ञान का बड़े सुंदर शब्दों में वर्णन किया है जो इस प्रकार है- 'मेरी चित्र के प्रति रुचि और उसकी जाँच करने का अभ्यास इस सीमा तक पहुँच गया है कि जब किसी मृत या जीवित कलाकार की कृति बिना बताये मेरे सम्मुख लायी जाती है तो मैं कुछ ही क्षणों में बता देता हूँ कि यह अमुक-अमुक व्यक्ति का कार्य है। यदि एक चित्र में कई शबीहें हों और प्रत्येक चेहरा भिन्न चित्रकार का बनाया हुआ हो तो मैं पहचान सकता हूँ कि कौन सा चेहरा उनमें से किसका बनाया हुआ है। यदि एक चेहरे में ही किसी दूसरे आदमी ने आँख और भृकुटी बनाई है, तो मैं यह पहचान सकता हूँ कि वास्तविक चेहरा किसका बनाया हुआ है और आँख और भौहें किसने बनाई हैं।' इससे जहाँगीर के चित्रकला विषयक ज्ञान सुस्पष्ट है।

जहाँगीर को यूरोपीय चित्रों में भी पर्याप्त रुचि थी और उसने कई धार्मिक तथा जीवन-सम्बन्धी यूरोपीय चित्र उपलब्ध कर लिये थे। एक बार एक अंग्रेज राजदूत सर टामस रो जहाँगीर के दरबार में आया तो उसने जहाँगीर के लिए कुछ चित्र दिखाये जिनमें से एक चित्र जहाँगीर को बहुत पसंद आया, जो उसने सर टामस रो से एक रात के लिए ले लिया। दूसरे दिन सम्राट ने सर टामस रो के सम्मुख उस चित्र की पाँच प्रतियाँ प्रस्तुत कर दीं और 'रो' को यह पहचानना कठिन हो गया था कि उनमें से कौन सी उसकी मूल तस्वीर है। इस पर सम्राट ने कहा—'हम चित्रकला में उतने निर्बल नहीं हैं, जितना तुम हमको समझते हो।' जहाँगीर को अपने चित्रकारों पर बहुत अभिमान था। अकबर के समान जहाँगीर ने चित्रकारों की सुविधाजनक स्थिति को और अधिक महत्त्व दिया, इसी कारण अनेक कलाकार उसके दरबार में आये।

'तुजके जहाँगीरी' में जहाँगीर ने एक स्थल पर कश्मीर में बनवायी एक चित्रदीर्घा या गैलरी का वर्णन किया है, उसके अनुसार—'यह दीर्घा कुशल चित्रकारों के हाथों से अलंकृत थी। सबसे अधिक सम्माननीय स्थान पर हुमायूँ की छवि थी और मेरे पिता का चित्र मेरे भाई शाह अब्बास के सम्मुख था। उनके बाद मिर्जा कामरा, मिर्जा मोहम्मद हकीम, शाह मुराद और सुल्तान दानियाल की छवियाँ थीं। दूसरी मंजिल पर अमीरों और विशेष सेवकों की छवियाँ थीं। बाह्य कक्ष की दीवारों पर कश्मीर के रास्ते के कई स्थानों के दृश्य जिस क्रम से मैंने देखे थे उसी क्रम से चित्रित किये गए थे।' इस प्रकार की दीर्घा [illegible] चित्रों का समय १६२० ई० अनुमानित है। इसी प्रकार का एक सुंदर शाहीमहल ([illegible]नूर) जहाँगीर ने अजमेर में बनवाया था, जिसके सुंदर चित्रों से अलंकृत होने का उल्लेख मिलता है।

जहाँगीर के समय के चित्रकार और उनकी स्थिति—जहाँगीर के समय में चित्रकारों की स्थिति बहुत अच्छी थी। चित्रकार मनसबदार होते थे और उनके कार्य करने के लिए उत्तम चित्रशालाएँ भी थीं, जिनमें भारतीय तथा फारसी या हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकार कार्य करते थे। बादशाह स्वयं चित्रकारों का कार्य देखता था और जिन चित्रकारों का कार्य उत्तम होता था, उनको वह इनाम देता था और उस चित्रकार का वह वेतन भी बढ़ाता था। उसने अपने दरबारी चित्रकार फार्रुख बेग (कुलमाक) के एक चित्र पर प्रसन्न होकर उसको दो हजार रुपये का इनाम दिया था। इसी प्रकार मंसूर के एक बैलगाड़ी के चित्र से प्रभावित होकर बादशाह ने उसको एक सहस्र मुद्राएँ पुरस्कार स्वरूप प्रदान की। [illegible] अब्दुल हसन को अपने समय का सबसे अच्छा चित्रकार मानता था। अब्दुल हसन आकारिजा का पुत्र था और उसको सम्राट ने 'नादिर-उज़्ज़मा' (युग शिरोमणि) की उपाधि से विभूषित किया था। अब्दुल हसन के अतिरिक्त उस्ताद मंसूर जिसको 'नादिर उल असर' की उपाधि प्रदान की गई थी, पशु-पक्षियों के चित्रण तथा रेखांकन में अपनी सतति [illegible] कलाकार था। छवि अंकन के लिए बिशनदास बेजोड़ चित्रकार था।

जहाँगीर के दरबार में चित्रकार की सुनिश्चित स्थिति देखकर विभिन्न फारसी चित्रकार उसकी शरण में आये। इन चित्रकारों में कुलमाक का सुप्रसिद्ध चित्रकार फोर्ठखबेग, हिरात का आकारिजा और उसका पुत्र अब्बुल हसन, स्मार्क का मोहम्मद नादिर तथा मोहम्मद मुराद ऐसे ही चित्रकार थे, जो जहाँगीर के दरबार में सुदूर देशों से आये। इसी प्रकार भारतीय चित्रकार भी जहाँगीर के दरबार में आ रहे थे। इन चित्रकारों में गोवर्धन, मनोहर, दौलत तथा उस्ताद मंसूर था। उस्ताद मंसूर भारतीय मुसलमान था। जहाँगीर के दरबार में इन चित्रकारों के अतिरिक्त अकबर की चित्रशाला के चित्रकार भी उसी प्रकार कार्य करते थे।[11] मनोहर को पशु-चित्रण में, उस्ताद मंसूर और मिस्किन को पक्षी चित्रण में उच्च स्थान प्राप्त था।

बादशाह प्रायः चित्रकार को यात्राओं और उत्सवों आदि के अवसर पर अपने साथ रखता था। जब वह शिकार आदि के लिए जाता था तो चित्रकार भी उसके साथ जाते थे। बादशाह इन अवसरों की घटनाओं पर चित्रकारों से चित्र बनवाया करता था। एक चित्र उदाहरण जिसमें शेर के शिकार का दृश्य है, से इस बात की पुष्टि होती है (इस चित्र का विवरण आगे दिया जाएगा). इस शिकार-चित्र की आकृतियों की कल्पना नहीं की जा सकती और चित्रकार ने इस घटना को देखा होगा। अकबर को लड़ाइयों के दृश्यों के चित्र बनवाने में अधिक रुचि थी परन्तु जहाँगीर को शान्ति के प्रसंगों से सम्बन्धित चित्र बनवाने में अधिक रुचि थी।

जहाँगीर ने विदेशी चित्रकारों को बुलाकर अपने युवाकाल में ही फारसी कला को अधिक प्रोत्साहित किया था। इस प्रकार के चित्र उदाहरणों में एक 'कलीलयदमिनाह' की प्रति है जो १६१० ई० में बनकर तैयार हुई थी और अब ब्रिटिश म्युज़ियम में सुरक्षित है। इन चित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक फारसी कलाकार मुगल शैली को पूर्णतया ग्रहण और आत्मसात नहीं कर सके थे।[12]

शाहजहाँ—जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् शाहज़ादा खुर्रम शाहजहाँ के नाम से १६२८ ई० में सिंहासन पर बैठा और उसने १६५८ ई० तक राज्य किया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था, इस कारण हिन्दू धर्म के प्रति उसकी नीति अनुदार थी। शाहजहाँ की विशेष रुचि भवन की ओर थी, अतः उसने भवन निर्माण तथा वास्तुकला के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। शाहजहाँ द्वारा निर्मित भवनों में मोती मस्जिद, जामा-मस्जिद, लाल किला तथा दीवाने-खास और दीवाने-आम कलापूर्ण होने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। उसके समय की वास्तुकला का भव्यतम उदाहरण ताजमहल है जो आज भी संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। उसने अपनी प्रिय बेगम मुमताज़ महल की स्मृति में इस कलानिधि का निर्माण कराया और इस प्रेम स्मारक के लिए लगभग चार लाख पौंड स्टरलिंग का व्यय किया। १६५८ ई० में शाहजहाँ के पुत्र औरंगज़ेब ने उसे नज़रबंद कर दिया और आगरे के किले में उसकी १६६६ ई० में मृत्यु हो गई।

शाहजहाँ के समय के चित्रकार तथा उनकी स्थिति—शाहजहाँ को अपने पूर्वजों के समान भवन निर्माण कराने में बहुत रुचि थी और उसका वह भवन प्रेम उनसे भी अ

हो गया। इस कारण शाहजहाँ के राज्यकाल में चित्रकला उपेक्षित सी रह गई। यद्यपि चित्रकारों तथा चित्रों की संख्या उतनी ही रही, परन्तु इन चित्रों में पहले जैसी सजीवता और स्वच्छन्दता नहीं रही।

जहाँगीर की चित्रशाला के चित्रकार शाहजहाँ के दरबार में उसी प्रकार कार्य करते रहे, इनके अतिरिक्त उसने कुछ नवीन चित्रकारों की भी नियुक्ति की। गोवर्धन, मोहम्मद नादिर, विचित्तर, चित्रमन आदि उसके दरबार के प्रमुख चित्रकारों में गिने जाते थे। शाहजहाँ के समय में मुगल चित्रशाला और चित्रकारों की स्थिति प्रायः उसी प्रकार चलती रही जिस प्रकार की स्थिति जहाँगीर के दरबार में थी। परन्तु शाहजहाँ के भवन प्रेम तथा कट्टरपन के कारण चित्रकला को यथेष्ठ प्रोत्साहन नहीं मिला और चित्रकारों की कृतियों में धीरे-धीरे दरबारी अदब-कायदे और बाह्य तड़क-भड़क ही रह गई।

दारा शिकोह (१६१५-१६५९ ई०)—शाहजहाँ की तुलना में उसका ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा दारा शिकोह चित्रकला का परमप्रेमी सिद्ध हुआ। दारा आध्यात्मिक रुचि का व्यक्ति था। हिन्दू विद्वानों और चित्रकारों के प्रति उसे प्रेम था। दारा का चालीस चित्रों का मुरक्का या चित्राधार (एलबम) जो अब इंडिया आफिस लाइब्रेरी, लंदन में सुरक्षित है, उसके अगाध कलाप्रेम का परिचायक है। दारा द्वारा अपनी प्रिय पत्नी नादिरा बेगम को उपहार में दिया हुआ एक चित्राधार भी इस मुरक्के में संगृहीत है। यह मुरक्का उसने नादिरा बेगम को १६४१-१६४२ ईसवी में भेंट किया था।[7]

औरंगज़ेब—१६५८ ईसवी में शाहजहाँ को बंदी बनाकर उसका चतुर्थ पुत्र औरंगज़ेब आलमगीर के नाम से राजसिंहासन पर बैठा। औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को उच्च पदों से हटा दिया और जजिया फिर से लगा दिया। राजपूत राजा मुगल साम्राज्य के विरोधी हो गए और उन्होंने विद्रोह आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जो शान्तिपूर्ण कलात्मक वातावरण उसके पूर्वजों ने बनाया था, समाप्त हो गया और कलाकार, विद्वान, हिन्दू सामंत तथा सरदार आदि सभी मुगल दरबार छोड़कर इधर-उधर भागने लगे।

चित्रकारों की स्थिति—औरंगज़ेब ने कला और कलाकारों के वातावरण को उसी प्रकार समाप्त कर दिया जिस प्रकार साकी और रिंद (सुरा पिलाने वाले और सुरा पीने वाले) की महफिल में कोई मोमिन (पवित्र व्यक्ति) बाधा बन जाता है। उसने चित्रकला को धर्मनिषिद्ध घोषित कर दिया और दरबार में चित्रकला का कोई भी स्थान न रहा। कलाकारों को नवीन आश्रय और संरक्षण प्राप्त करने के लिये छोटे-छोटे राज्यों की ओर भागना पड़ा। अधिकांश चित्रकार पहाड़ी राज्यों की ओर चले गये।

प्रायः मुगल सम्राट ही नहीं बल्कि अमीरउमरा भी अपने निजी चित्रकार नियुक्त करते थे। अतः दरबारी संरक्षण समाप्त हो जाने पर भी कुछ चित्रकार सम्भवतः इन अमीरों के संरक्षण में कार्य करते रहे। औरंगज़ेब चित्रकला का कट्टर विरोधी था परन्तु फिर भी उसके युवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के चित्र मिलते हैं। यद्यपि आलमगीर चित्रकला का

विरोधी था तो भी उसने अनुमानतः राजनीतिक उद्देश्य या आनंद के लिए चित्र बनवाये, ऐसे भी कुछ प्रमाण मिलते है कि जब उसने ग्वालियर के किले में कुछ राजबंदियों को बंदी बनाकर रखा, जिनमें उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान भी था तो कहा जाता है कि जब उनको केवल एक प्याला पोस्त की खीर ही खाने को देता था। ऐसा कहा जाता है कि इन भूखे राजबंदियों के शारीरिक परिवर्तनों को देखने के लिए या उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान की ममता के कारण समय-समय पर उनके चित्र बनवाये।[९] इस प्रकार चित्रकला के जिस वृक्ष का बीजारोपण अकबर महान ने किया था और सम्राट जहाँगीर ने जिसको सींचा, उसको औरंगज़ेब ने समूल नष्ट कर दिया।

औरंगज़ेब से परवर्ती मुगल कला—१७०७ ई० में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य की अवस्था बहुत निर्बल हो गई। औरंगज़ेब के समय से मुगल साम्राज्य के साथ ही चित्रकला का पतन होता चला गया। यद्यपि शाहआलम प्रथम (१७०७-१७१२ ई०), जहाँदारशाह (१७१२ ई०), फर्रुखसियर (१७१३-१७१९ ई०), रफीउद्दौला (१७१९ ई०) तथा मुहम्मदशाह (१७१९-१७४८ ई०) के समय तक मुगल शैली में कुछ पहले जैसी विशेषताएँ दिखाई देती रही परन्तु अन्तःपुर के दृश्य या दरबार के नैतिक अधःपतन के दृश्य भी चित्रकारों की तूलिका के विषय बन गए थे। अधिकांश संगीत गोष्ठियाँ, मुजरों, मद्यपान दृश्यों तथा काम-क्रीड़ाओं के चित्र ही बनाए जाने लगे। इसी समय राजस्थानी चित्रकला ने मुगल शैली की कुछ विशेषताएँ ग्रहण की और दूसरी ओर राजस्थानी-शैली का परवर्ती मुगल कला पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार दोनों शैलियों की परम्परा का मिश्रण हो गया और दोनों शैलियाँ घुल मिल गई। कभी-कभी इन सम्मिश्रित शैली के चित्रों को किसी एक शैली के अन्तर्गत रखना कठिन हो जाता है।

मुगल दरबार का जो जीर्ण-शीर्ण वैभव रह गया था वह अहमदशाह (१७४८-१७५४ ई०), आलमगीर द्वितीय (१७५४-१७५९ ई०), शाहआलम द्वितीय (१७५९-१८०६ ई०), अकबर द्वितीय (१८०६-१८३७ ई०), बहादुरशाह द्वितीय (ज़फर) (१८३७-१८५७ ई०) के समय तक पूर्णरूपेण समाप्त हो गया। शाह आलम नाममात्र का सम्राट था क्योंकि नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली, सूरजमल जाट, रुहेला तथा मराठा आक्रमणकारियों और लुटेरों ने दिल्ली को लूटकर मुगल राजकोष को खाली कर दिया और साथ में बहुत सी बहुमूल्य सामग्री जिसमें सम्भवतः चित्र तथा हस्तलिखित सचित्र पोथियाँ भी सम्मिलित थीं विदेशी आक्रान्ता अपने साथ ले गये। ऐसी खराब अवस्था में भी नाममात्र के परवर्ती शासक औरंगज़ेब के पश्चात् शाहआलम तक विधिवत दिल्ली दरबार की चित्रशाला चलाते रहे। इन खानदानी (वंश क्रमानुगत) परवर्ती चित्रकारों के पास प्राचीन चित्रों के खर्बे जो उन्हें वंशानुगत परम्परा (विरासत) में मिले थे। इन खर्बों की सहायता से बाजारू चित्रकार नवीन चित्र बनाते रहे। शाहआलमकालीन चित्रों पर बहुधा जाली राजसी मुहरें लगाकर भी चित्रकार संरक्षकों को धोखा देने लगे। यह भी सम्भव हो सकता है कि दि

के मुगल पुस्तकालय तथा चित्र निकेतन की लूट के पश्चात् यह अनुकृतिचित्र शाहआलम के लिए बनाये गए हों और इसलिए उन पर शाही मोहरें लगाई गई हों। चित्रकारों की स्थिति खराब हो गई और उनको जीविकोपार्जन के लिए बाजारू बनना पड़ा।

रुहेला कलम—मुर्शिदाबाद, बरेली (रुहेलखण्ड), लखनऊ तथा हैदराबाद, जो पहले मुगल प्रान्तों की राजधानियाँ थी, स्वतंत्र हो गई और यहाँ पर परवर्ती मुगल शैली संरक्षकों की रुचि के आधार पर चलती रही। रुहेला शक्ति के उदय से अनेक चित्रकार बरेली जा बसे और रुहेला सरदार हाफिज रहमत खाँ के समय तक पोथीखाने (कुतुबखाने) के लिए सचित्र पुस्तकें तैयार करते रहे। हेस्टिंग्ज तथा रुहेला सरदार हाफिज़ रहमत खाँ के बीच १७७४ ई० में मीरानपुर कटरा में घमासान युद्ध हुआ और रुहेलों की पराजय के पश्चात् रामपुर को छोड़कर शेष रुहेला राज्य अवध के साथ जोड़ दिया गया। अब रुहेला पोथियाँ बरेली के हेस्टिंग्ज़-रुहेला युद्ध के पश्चात् अंग्रेज़ी अधिकारियों ने लूटीं और बरबाद कीं। कुछ पोथियाँ लखनऊ का नवाब आसफउद्दौला अपने साथ ले गया जहाँ वे पुनः अंग्रेज़ों ने बरबाद कीं (१८५८ ई०) और यहाँ से ये पोथियाँ ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में पहुँच गईं। ब्रिटिश म्युज़ियम में हाफिज़ रहमत खाँ की एक सचित्र पांडुलिपि प्राप्त है। आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले बहादुर हाफिज़ रहमत खाँ के वंशजों के पास अभी भी इस शैली की चित्रित पोथियाँ हैं परन्तु उनकी कला प्रकाश में नहीं आ सकी है। बरेली के पुराने शहर में काज़ी परिवार के पास अभी भी ऐसी सचित्र पोथियाँ हैं। रुहेला शासन के पतन के पश्चात् रुहेला चित्रकार गढ़वाल राज्य में आ बसे या रामपुर में नवाब के संरक्षण में चित्र बनाते रहे। रामपुर का नवाब अंग्रेजों से मिल गया था। अतः अनेक चित्रकार कलकत्ता या पटना चले गए। बरेली का प्रसिद्ध चित्रकार बहाव तथा रामपुर का चित्रकार बच्चन कलकत्ता जा बसे। बहाव कलकत्ता के रंगमंचों के लिए जंगल के दृश्य (या सेट्स) बनाने के लिए प्रसिद्ध हुआ।

मुगलकाल की चित्रकला

बाबर तथा हुमायूँ के काल की चित्रकला—भारतीय इतिहास में मुगल साम्राज्य एक नवीन युग है और उसकी चित्रकला एक सुखद संयोग के रूप में दरबारी भव्यता और भोग-विलास का उल्लास अपने प्रकोड़ में संचित किये हुए है। न जाने कितने विदेशी और स्वदेशी चित्रकारों के महान परिश्रम और शिल्प साधना के परिणामस्वरूप मुगलकला का जन्म हुआ। आरम्भिक मुगल चित्रों की शैली परवर्ती कला से विशेष पृथकत्व लिये हुए है। आरम्भिक चित्र ईरानी [illegible] लिए हैं और इनमें ईरानी शैली का अनुकरण किया गया है। इस प्रकार की शैली के उदाहरण भारतवर्ष में बहुत कम उपलब्ध हैं। इन चित्रों में फारस की पन्द्रहवीं शताब्दी की [illegible]-शैली से बहुत समानता है। इस प्रकार के अधिकांश चित्र हुमायूँ के समय के हैं। [illegible] हुए बाबर जिन पुस्तकों को अपने साथ लाया उनमें 'शाहनामा' की सचित्र प्रति

भी थी। यह प्रति लगभग २०० वर्ष तक मुगल शाही कुतुबखाने में रही और बाद में अंग्रेजों के हाथ लग गई और लंदन पहुँची। आज यह प्रति एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। यह प्रति फारसी कला की निधि है। पहले कहा जा चुका है कि बाबर अपने अल्प शासन-काल में कलाप्रेम प्रदर्शित नहीं कर सका था।

१५५० ई० तक हुमायूँ का जब काबुल पर अधिकार हो चुका था तो दो विदेशी चित्रकार ख्वाजा अब्दुस्समद तथा मीर सैय्यद अली ईरान से हुमायूँ के संरक्षण में काबुल आ गये थे जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है। इन चित्रकारों ने हुमायूँ की आज्ञा पर 'दास्ताने अमीर हम्ज़ा' के चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिये थे जो पूर्णतया फारसी शैली के थे। इस चित्रावली के लगभग १४०० चित्र बाद में अकबर के समय में बनाये गए इस प्रकार हम्ज़ा चित्रावली अकबर के समय में बनकर पूर्ण हुई। इस चित्रावली में आरम्भिक चित्र-शैली को बनाये रखने की चेष्टा की गई। इस प्रकार के आरम्भिक चित्रों के चेहरों की बनावट, प्रकृति तथा पहनावा ईरानी फारसी ढंग का है और रेखा में चीनी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस शैली के उदाहरण बहुत कम प्राप्त हैं। ये चित्र लंदन तथा दिल्ली आदि के संग्रहालयों में ही प्राप्त हैं।

प्रारम्भिक चित्रों पर ईरानी शैली का प्रभाव—आरम्भिक मुगल शैली के चित्र ईरानी-फारसी चित्रों के समान हैं और मोजाइक चित्रों के समान चमकदार हैं। अधिकांश चित्रों में चमकदार लाल, नीले तथा हरे रंगों का प्रयोग किया गया है और चेहरे की सीमा रेखा एक वक्र के द्वारा बनायी गई है। आकृतियों में वह सजीवता नहीं है जो परवर्ती चित्रों में दिखाई पड़ती है। कपड़ों की बनावट सरल और सपाट है उनमें शिकन या फहरहन का आभास नहीं मिलता और हाशिये बेलबूटों के द्वारा सजाये गए हैं। आकृतियों की अंग-भंगिमाएँ तथा हस्तमुद्राएँ निर्बल हैं। चित्रों की सीमा रेखाएँ कोणदार चीनी ढंग की हैं। यह चित्र यथार्थ न होकर आलंकारिक हैं परन्तु पृष्ठभूमि में दरारदार सूखे पर्वतों तथा वृक्षों इत्यादि को आलंकारिक विधि में बनाया गया है। वृक्षों को अधिकांश पत्रों से आच्छादित बनाया गया है। इन चित्रों में क्षितिज रेखा को बहुत ऊपर बनाया गया है, जिससे चित्र में अत्यधिक स्थान या दूरी का बोध होता है। चित्रों की पृष्ठभूमि तथा आकृतियों के वस्त्रों आदि में सोने के रंग का बड़ी सुंदरता से प्रयोग किया गया है। सोने के रंग को उभार देने के लिए चित्रों की सीमारेखाएँ काले रंग से बनायी गई हैं। कपड़ों, पर्दों, कालीनों तथा भवन आदि में पेचीदा (जटिल) (डिज़ाइन) बनाये गए हैं।

ईरानी-फारसी शैली के चित्रों में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता और न ही चित्रों में गठनशीलता तथा गोलाई लाने के लिए छाया का प्रयोग किया गया है। ये चित्र सपाट रंगों तथा रेखा के प्रयोग से बनाये गए हैं परन्तु चित्रों का संयोजन तथा योजनाएँ प्रभावशाली और सुंदर हैं।

अकबरकालीन चित्र—अकबर ने १५६९ ई० में फतेहपुर सीकरी के भवनों में अलंकरण कार्य प्रारंभ करा दिया। इन महलों में भित्तिचित्र भी बनाये गए। ये चित्र बलुआ पत्थर की दीवारों पर सफेद अस्तर लगाकर कागज़ी चित्रों की पद्धति पर बनाये गए प्रतीत होते हैं। अधिकांश चित्र फारसी शैली के हैं, परन्तु रंग भारतीय हैं। चित्रों में चीनी प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है और अज़गर तथा बादल आदि चीनी शैली में बनाये गए हैं।

अकबर के समय में चित्रकला का अत्यधिक विकास हुआ और अनेक प्रकार के चित्र बनाये गए हैं जिसमें कागज़ी पुस्तक चित्रों या पोथी चित्रों तथा शबीह चित्रों की अधिकता थी। उसके समय के चित्रों को चार वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(१) अभारतीय काव्य या कथाओं या फारसी कथाओं के चित्र—हम्ज़ानामा चित्रावली इस प्रकार का उदाहरण है जिसका निर्माण १५६०-१५७५ ई० के मध्य अकबर ने कराया। इसी प्रकार शाहनामा की सचित्र प्रतियाँ आदि भी तैयार की गईं। खमसानिज़ामी तथा बहारिस्तानेजामी पर अकबर ने विशेष रूप से चित्र बनवाये।

(२) भारतीय महाकाव्यों या कथाओं के चित्र—इन चित्रों के विषय भारतीय काव्यों जैसे रामायण, महाभारत, नलदमयन्ती कथा, नैषधचरित्र, हरिवंश सरितसागर आदि पर आधारित हैं।

(३) ऐतिहासिक चित्र—अकबर के शाही पोथीखाने में ऐतिहासिक महत्त्व की अनेक पुस्तकें थीं। इस प्रकार के ऐतिहासिक चित्र तारीखेइल्फी, तारीखेखानदाने तैमूरिया, अकबरनामा आदि की प्रतियों में बनाये गए।

(४) व्यक्ति चित्र—अकबर को व्यक्ति-चित्रों या शबीहों का बहुत शौक था। उसने अपने तथा अपने दरबारियों के व्यक्ति-चित्र बनवाये। इस प्रकार राज्य के विशिष्ट और महान व्यक्तियों और पूर्व-पुरुषों के चित्रों का एक बड़ा मुरक्का (एलबम) उसने तैयार कराया।

अकबरकालीन सचित्र पोथियाँ—अकबर 'अमीरहम्ज़ा' की कहानी 'दास्ताने अमीरहम्ज़ा' में विशेष रुचि लेता था। इस कथा में ३६० कहानियाँ हैं, जिनको वह कथावाचक के रूप में अन्तःपुर की बेगमों को बड़े शौक से सुनाता था। हुमायूँ के समय में ही इस विषद कथा के चित्र बनाये जाने लगे थे और इसका पर्याप्त कार्य समाप्त हो गया था। 'मसीरउलउमरा' के अनुसार अकबर के समय में हम्ज़ानामा के चित्र बनते रहे।[15] इस प्रकार अकबर ने आदि से अन्त तक अमीरहम्ज़ा की सचित्र प्रतिलिपि बनवाने की आज्ञा दी। अकबर ने इस कथा को बारह खण्डों में विभाजित कराया और इनमें से प्रत्येक खण्ड में एक सौ जुज़ थे। प्रत्येक जुज़ सिरा के बराबर लम्बा था और प्रत्येक जुज़ में दो चित्र थे। इस प्रकार इस प्रतिलिपि में २४०० चित्र बनाये गए थे। इन चित्रों के ऊपर सुलेखन लिपि में चित्र का विवरण लिखा जाता था। ख्वाजा अताउल्लाह लिपिक या मुंशी ने इन चित्रों पर विवरण लिखे हैं। मुगल दरबार में मुंशी को 'काज़वीन' के नाम से पुकारा जाता था। अमीरहम्ज़ा के चित्रों में फारसी शैली का प्रभाव अधिक है। ये चित्र सूती कपड़े पर अस्तर लगाकर बनाये गए हैं और इनमें से कुछ बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित हैं। ये चित्र बड़े

आकार के हैं और ६८×५२ सेंटीमीटर लम्बाई तथा चौड़ाई के है। कालान्तर में अकबर की चित्रशाला में फारसी प्रभाव कम होता गया और राजस्थानी, कश्मीरी या भारतीय प्रभाव बढ़ता गया। वास्तव में यहीं से मुगल शैली का पूर्ण विकसित रूप आरंभ हो जाता है। अकबर के समय में हम्ज़ानामा के अतिरिक्त 'शाहनामा', 'चंगेज़नामा', 'ज़फरनामा', 'तवारीख-खानदाने तैमूरिया', 'रज़्मनामा' (महाभारत का फारसी अनुवाद), 'वाकयाते-बाबरी' (बाबर की आत्मकथा), 'अकबरनामा', 'अनवारे सुहैली' (पंचतंत्र का फारसी अनुवाद), 'आयारदानिश' (पंचतंत्र का फारसी अनुवाद), 'तारीख रशीदी' (दराबनामा), 'खमसानिज़ामी', 'बहारिस्ताने जामी', 'रामायण', 'हरिवंश', 'महाभारत', 'योगवशिष्ट', 'नलदमयन्ती कथा', 'शकुन्तला', 'कथा सरित सागर', 'दशावतार', 'कृष्णचरित', 'तूतीनामा', 'अजीबुलमख़लूकात', 'आइनेअकबरी', 'कलीला-व्य-दिमनाह' (रूदगी कवि के द्वारा किया गया महाभारत का फारसी अनुवाद) आदि ग्रंथों की सचित्र प्रतिलिपियाँ तैयार की गईं और अकबर के पुस्तकालय में रखी गईं। शाहनामा की प्रति में ही जामी कवि के काव्य का एक भाग संकलित है। आज इन सचित्र ग्रंथों की प्रतियाँ इधर-उधर संग्रहालयों में फुटकर पृष्ठों के रूप में या समुचित अवस्था में पहुँच गई हैं। अधिकांश कृतियाँ विदेशी संग्रहालयों में ही प्राप्त हैं इन प्रतिलिपियों में से 'नलदमयन्ती', 'कलीला-व्य-दिमनाह' तथा 'आयार-दानिश' की प्रतियाँ ब्रिटिश म्युज़ियम इंग्लैंड तथा कुछ अन्य संग्रहालयों में प्राप्त हैं। ब्रिटिश म्युज़ियम में 'बाबरनामा' तथा दराबनामा की प्रतियाँ भी सुरक्षित हैं और 'दराबनामा' की इस प्रति में ही जामी की कविता का एक भाग है। 'बाबरनामा' की दो अन्य सचित्र प्रतियाँ प्राप्त हैं, जिनमें से एक प्रति के फुटकर पृष्ठ साउथ केसिंगटन संग्रहालय में तथा लुव्र संग्रहालय (फ्रांस) में सुरक्षित हैं।

अकबरनामा की प्रति के ११७ चित्र 'अमीरहम्ज़ा' की प्रति के २५ पृष्ठ तथा 'बाबरनामा' प्रति के कुछ फुटकर पृष्ठ विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट संग्रहालय साउथ केसिंगटन में सुरक्षित हैं। बाबरनामा के इन फुटकर पृष्ठों की अवस्था खराब है। 'अमीरहम्ज़ा' प्रति के ६१ पृष्ठ आर्ट एण्ड इन्डस्ट्री म्युज़ियम वियना में हैं और कुछ अन्य फुटकर पृष्ठ यूरोप के दूसरे संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। 'खमसानिज़ामी' के कुछ फुटकर पृष्ठ बोदलीयन लाइब्रेरी-आक्सफोर्ड तथा एक प्रति मि० डायसन पेरीन्स, मेलबर्न वोरकेस्टरशायर-इंग्लैंड (Mr. Dyson Perrins of Malvern, Worcestershire) के संग्रह में हैं। हम्ज़ा चित्रावली के चौदह सौ पृष्ठ-पटचित्रों में से अब डेढ़ सौ चित्रों का ही अनुमान लगता है इनमें से दो बम्बई के श्री आर्देशिर संग्रहालय में, एक हैदराबाद निज़ाम संग्रहालय में तथा दो भारत कला भवन-काशी संग्रहालय में और एक बड़ौदा संग्रहालय में है।

इन सचित्र पोथियों की प्रतियों में से भारतवर्ष में केवल 'रज़्मनामा', 'तैमूरनामा' तथा 'बाबरनामा' की प्रतियाँ ही उपलब्ध हैं। 'रज़्मनामा' तथा 'रामायण' की एक-एक प्रति इस समय हिज़ हाईनेस महाराजा जयपुर के संग्रह में सुरक्षित है। 'तैमूरनामा' की एक प्रति

(39)

बांकीपुर पुस्तकालय मे सुरक्षित है। बाबरनामा की प्रति [illegible] सुरक्षित है। इस प्रति को संग्रहालय ने 'आगरा कालेज-आगरा' से प्राप्त किया था। 'तारीखे खानदाने तैमूरिया' की एक सचित्र प्रति खुदाबख्श खाँ पुस्तकालय, पटना में सुरक्षित है। अकबर के समय में सम्भवतः रसिकप्रिया नामक हिन्दी काव्य पर भी चित्र बनाये गए।

अकबर ने पोथी चित्रों के बनवाने में विशेष रुचि दिखाई। इन पोथियों के अतिरिक्त कई अन्य भिन्न-भिन्न पोथियों के पृष्ठ प्राप्त हुए है। जिनमें 'तारीख-रसीदी', 'अनवारे-सुहेली', 'तारीख-अल्फी' और हरिवंश के फारसी अनुवाद के चित्र प्राप्त हैं। इनमें से 'अनवारे सुहेली' की अकबरकालीन चार प्रतियों का पता चलता है जिनमें से एक जो लाहोर में चित्रित की गई थी, का समय १५९६ ई० है। इस प्रति का एक पृष्ठ भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित है। दूसरी प्रति ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में सुरक्षित है। सम्भवतः यह प्रति अकबर के बाद की है। तीसरी प्रति रामपुर स्टेट लायब्रेरी, रामपुर तथा चौथी रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन में सुरक्षित है।

इन पोथियों की बहुत सी प्रतियों पर शाही मुहरें तथा मुगल बादशाहों के लेख भी प्राप्त हैं। पटना संग्रहालय वाली 'तारीखे खानदाने तैमूरिया' की प्रति पर शाहजहाँ की शाही मोहर तथा लेख हैं। शाहजहाँ को शाही पुस्तकालय की पुस्तकों पर लेख लिखने का शौक था। इस प्रति में दसवन्त का बनाया हुआ चित्र भी है। इस पोथी में तैमूरवंश का आरम्भ से लेकर अकबर के शासनकाल के बाइसवें वर्ष (१५७७ ई०) तक का इतिहास है। इस प्रति के निर्माण के समय सम्भवतः १८५० ईसवी से १८८५ ईसवी के मध्य रहा होगा। राजकीय संग्रहालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश में 'तूतीनामा' के कुछ चित्रित पृष्ठ सुरक्षित हैं।

महाभारत का अनुवाद 'रज़्मनामा' एक वर्ष के परिश्रम के पश्चात् १५८२ ई० मे बनकर पुरा हुआ। इसकी सचित्र प्रति बादशाह के लिये १५८८ ई० मे तैयार की गई जिसकी तीन जिल्दे थीं। परन्तु नादिरशाह के आक्रमण से पूर्व मुहम्मदशाह ने इस प्रति को महाराजा जयसिंह सवाई (जयपुर) को भेंट मे दे दिया था। इस प्रकार यह आश्चर्यजनक पोथी नादिरशाह की बरबादी से बच गई और महाराजा जयपुर के संग्रह मे सुरक्षित है। साउथ-कैंसिंगटन वाली 'अकबरनामा' की प्रति पर सम्राट जहाँगीर का लेख है। यह प्रति १६०२ ईसवी तक बनकर तैयार हुई, परन्तु जहाँगीर ने इस पर अपना लेख लिख दिया है। अनुमानतः इस प्रति का कार्य अकबर के समय मे ही समाप्त हो गया था। इस प्रति मे एक सौ से अधिक चित्र है।

अकबरकालीन शबीह चित्र—पोथी चित्रों के अतिरिक्त अकबर के समय में बादशाह, विदूषकों, दरबारियों, संतों, साधुओं आदि की शबीहा तैयार की गई। अब्बुलफजल ने लिखा कि, "............जो लोग मर गये थे उनको इन चित्रों से नवीन जीवन और जीवित लोगों को अमरत्व प्राप्त हो गया।" बादशाह अकबर के अनेक चित्र प्राप्त हैं, जिनमें से दो बोस्टन संग्रहालय और एक इंडिया आफिस लायब्रेरी में सुरक्षित हैं।

अकबर का पोथीखाना—अकबर ने इन चित्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकों का एक विशाल संग्रह तैयार कराया और ये पोथियाँ एक विशाल शाही पुस्तकालय में संजोयी गई। इस पुस्तकालय में लगभग २४,००० पोथियों का संग्रह हो गया था, जिनका मूल्य साढ़े छः लाख रुपया था। पोथियों के एक-एक भाग (जिल्द) का मूल्य २७० रुपया था। अकबर ने इन पुस्तकों को लिखने, सजाने या अलंकृत करने के लिए तथा जिल्द तैयार करने के लिये कुशल और विख्यात कारीगरों को नियुक्त किया था। फैजी के निधन (१५८५ ई०) के पश्चात उसके पुस्तकालय से ४००० पुस्तकें शाही पुस्तकालय में आयीं, इस प्रकार शाही पुस्तकालय में पोथियों की संख्या ३०,००० तक पहुँच गई। आज ये पोथियाँ बहुत कम प्राप्त हैं और इनके साथ में अनेक चित्रकारों की कृतियाँ भी समाप्त हो गई हैं।

अकबर के शाही पुस्तकालय के समान ही विख्यात अब्दुल रहीम खानखाना का अपना पोथी संग्रह था जिसमें हस्तलिखित पांडुलिपियाँ तथा सचित्र पोथियाँ थीं। यह विशाल पुस्तक संग्रह औरंगजेब के शासनकाल के पश्चात् आक्रमणकारियों के द्वारा लूट में तितर-बितर हो गया।

अकबरकालीन चित्रों की विशेषताएँ—अकबर के समय में अधिकांश फारसी तथा भारतीय काव्यों, कथाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं या दरबारी जीवन से सम्बन्धित चित्र बनाये गए।

अकबरकालीन चित्रों में रंग चमकदार हैं जो मीने के समान चमकते हैं। इस समय के चित्रों में जो रंग प्रयोग किये गए उन रंगों को तीन वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—(१) चमकदार रंग जिनमें सिंदूर, प्योड़ी और लाजवर्दी, सामान्य चमक वाले रंग हिंगुल, गुलाली (रक्त और लाल रंग) और जंगाल (हरा) है, (२) बुझे हुए रंग जिनमें हिरौंजी, गेरू, रामरज, खड़िया तथा हरा ढाबा और गंदे रंगों में नील तथा स्याही (काजल) हैं, (३) सफेद रंग का प्रयोग रंगों को हल्का करने के लिए या स्वतंत्र रूप से किया गया है। अकबरकालीन चित्रों में मूल रंगों का प्रयोग है और रंगों में स्याही मिलाकर साये का रंग नहीं बनाया गया है, इस कारण रंग गंदे और धुंधले नहीं पड़े हैं।

हम्ज़ा चित्रावली के पश्चात् यह शैली अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त कर लेती है और इस समय की मुगल चित्रकला में राजस्थानी, ईरानी, कश्मीरी शैली की अनेक विशेषताएँ अपना प्रभाव डालने लगती हैं और यह शैली पूर्णरूपेण एक भारतीय शैली बन जाती है। इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण जयपुर के 'रज्मनामा' तथा 'अकबरनामा' के चित्रों से मिलते हैं। इन चित्रों में रेखाएँ गोलाईयुक्त हैं तथा आकृतियों के चित्रण में डौल या गोलाई का आभास प्रतीत होता है। इन चित्रों में रेखांकन गतिशील है, एक चश्म चेहरे बनाये गए हैं। हस्तमुद्राओं, वस्त्रों की फरहन तथा शिकनों, वृक्षों की पत्तियों के रेखांकन में यथार्थता, बारीकी तथा स्वाभाविकता है। इन चित्रों में ईरानीपन यदि कहीं दिखाई

पड़ता है तो नक्काशी या आलंकारिक आलेखनों में, परन्तु अलंकरण को इन चित्रों में विशेष महत्त्व नहीं मिला है।

जहाँगीरकालीन चित्र

जहाँगीर के समय में पोथी चित्रों का निर्माण पहले की भाँति चलता रहा। इस समय में चित्रकार की कल्पना के लिए अधिक क्षेत्र तथा स्वतंत्रता प्राप्त हुई। कलाकारों का एक दल बादशाह के साथ रहता था। चित्रकारों की सूची तैयार की जाती थी और प्रत्येक चित्रकार का नाम सूची में लिखा जाता था। बादशाह जहाँगीर ने तत्कालीन दरबारी जीवन और अपने जीवन को चित्रित कराने में प्रमुख दिलचस्पी ली।

जहाँगीरकालीन चित्रों पर चित्रकारों के द्वारा लिखित नाम प्राप्त नहीं होते। प्रायः यह नाम मुंशी लिखा करते थे और पोथियों के साथ चित्रकारों के नामों की सूची को भी नहीं जोड़ा जाता था। जहाँगीर के दरबार के प्रिय कलाकार बिशनदास, फर्रुखबेग, अब्बुल हसन, मंसूर, मनोहर तथा गोवर्धन थे। अब्बुल हसन नामक चित्रकार ने 'जहाँगीरनामा' की प्रति का मुख्य चित्र बनाया था। 'जहाँगीरनामा' की यह पहली प्रति जहाँगीर के सिंहासनारोहण के चौदहवें वर्ष में बनकर तैयार हुई थी। बादशाह ने यह पहली प्रति शाहजहाँ को अपने लेखों सहित भेंट की। पन्द्रहवें वर्ष में 'जहाँगीरनामा' की दूसरी प्रति बनकर तैयार हुई थी जो जहाँगीर ने अपने दूसरे पुत्र परवेज के लिए भेजी परन्तु इन दोनों प्रतियों के चित्रों आदि के विषय में कुछ नहीं बताया जा सकता कि वे कहाँ हैं। वैसे तो 'जहाँगीरनामा' के अनेक फुटकर पृष्ठ इधर-उधर भारतीय संग्रहों से प्राप्त हैं। 'जहाँगीरनामा' की बादशाह जहाँगीर वाली निजी प्रति जिसका कुछ भाग नष्ट हो चुका है स्टेट लायब्रेरी-रामपुर (रामपुर राज्य पुस्तकालय) में सुरक्षित है।

फुटकर चित्रों की प्रथा—जहाँगीर के समय में चित्रों की जिल्दें तैयार नहीं की गईं बल्कि चित्रों को स्वतंत्र रूप से बनाया जाता था। जहाँगीर ने अपने मनोरंजन के अतिरिक्त दया, सहृदयता, मैत्री, क्रोध आदि के संतोषार्थ भी चित्रों का निर्माण कराया जिसका उल्लेख उसने अपनी आत्मकथा में स्वयं किया है और इस प्रकार के चित्रों के अनेक उदाहरण भी प्राप्त हैं। जहाँगीर ने स्वयं सुल्तान अलाउद्दीन शाह (१३५१ ई० से १३८८ ई०) तथा उसके सचिव ख्वाजा हसन के चित्रों का उल्लेख किया है। ये दोनों चित्र बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित हैं और इन चित्रों का समय सोलहवीं शताब्दी का तीसरा चरण है। इस प्रकार का एक अन्य चित्र रामपुर राज्य पुस्तकालय में है जिसमें अमीर शाईक नोयान बली को अंकित किया गया है। समय के अनुसार यह चित्र अकबरकालीन हो सकता है।

जहाँगीरकालीन शबीह चित्र—जहाँगीर ने अपने आत्म चरित्र में स्वयं लिखा है कि बिशनदास शबीह लगाने में बेजोड़ है। जहाँगीर ने अपने राजदूतों को शाहअब्बास (ईरान) के दरबार में १६१३-१६१८ ई० में भेजा और उसने इनके साथ बिशनदास चित्रकार को भेजा

था। जहाँगीर ने लिखा है कि–"बिशनदास ने मेरे भाई 'शाहअब्बास' की ऐसी सच्ची शबीह लगाई कि मैंने जब उसे शाह के सेवकों को दिखाया तो वे मान गए।" बादशाह ने बिशनदास को एक हाथी और मूल्यवान पुरस्कार दिये। इस चित्र की एक परवर्ती अनुकृति बोस्टन संग्रहालय में है। बिशनदास के बनाये चित्र बहुत कम प्राप्त हैं। एक चित्र में उसने शेखफूल नामक एक सूफी संत का चित्रण किया है जो कला भवन-काशी में सुरक्षित है। शेखफूल अपनी कुटी के आगे अपने विचार में मस्त बैठे बनाये गए हैं और उनके दर्शनों के लिए भक्त खड़े हैं, ऊपर एक घना नीम का वृक्ष चित्रित किया गया है। जहाँगीर को सच्चे साधु-सन्तों के प्रति अनन्य श्रद्धा थी, वह उनके चित्र बनवाया करता था। जहाँगीर ने अपने आत्म चरित्र में एक दरबारी इनायत खाँ का वर्णन किया है जो मृत्यु के समय बहुत दुर्बल और कंकाल मात्र हो गया था। बादशाह ने सहृदयता के कारण चित्रकार से उसकी तस्वीर भी बनवाई जो अब 'बोडलियन लायब्रेरी' आक्सफोर्ड में सुरक्षित है। इस चित्र में निर्बल मरणासन्न इनायत खाँ तकियों के सहारे पलंग पर लेटा है और उसकी पसलियाँ चमक रही हैं और चेहरे पर जैसे मृत्यु की छाया ने अधिकार जमा लिया है–इस चित्र के वातावरण में स्तब्धता है। एक अन्य चित्र में जहाँगीर के क्रोध का सुंदर प्रदर्शन है, यह चित्र रामपुर स्टेट, पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस चित्र में जहाँगीर का दरबार मंदाकर बाग में (आगरा के समीप) दिखाया गया है। जहाँगीर ने इस चित्र की घटना का स्वयं रोचक शब्दों में वर्णन किया है। घटना इस प्रकार थी–'उमरखान के पुत्र कउयाव को अपवित्र लोगों की सोहबत में पाया गया। इस अपराधी के पिता उमरखान तथा दादा मीर अब्दुल लतीफ मुगल दरबार में सम्मानित अधिकारी थे, परन्तु कउयाव लज्जा से नीचे सर झुकाये खड़ा है। उसके पीछे उसके दो साथी अपराधी बने खड़े हैं, जिनमें से एक की टोपी में सींग और एक की टोपी में कान लगे हैं। जहाँगीर ऊपर की ओर क्रोधित मुद्रा में सिंहासन पर बैठा अपराधी को कारावास की आज्ञा दे रहा है।'

उत्सवों के चित्र–गोवर्धन के द्वारा बनाये गए 'आवपासी' या 'गुलाबपासी' के उत्सव के चित्र का सम्राट ने सुंदर वर्णन दिया है। ये चित्र भी 'रामपुर स्टेट, लायब्रेरी' में सुरक्षित हैं।

जहाँगीर के सिंहासनारोहण का एक सुंदर चित्र जो मनोहर ने बनाया है रामपुर राज्य पुस्तकालय में प्राप्त है। इस चित्र में ताजपोशी (राज्याभिषेक) के उत्सव का सुंदर दृश्य दिखाया गया है। चित्र के मध्य भाग में दो हाथी हैं जो आकर्षक कपड़ों की झूलों आदि से सजे हैं, ऊपर वाला हाथी निशान या ध्वज वाला हाथी है। हाथियों के दोनों ओर तीन-तीन घुड़सवार हैं जो तुरही बजा रहे हैं। इन हाथियों तथा घुड़सवारों का रुख चित्र के बायीं ओर है, इन घुड़सवारों के आगे एक निशानबाज प्यादों की पंक्ति है जो निशान लिये खड़ा है। घुड़सवारों और हाथियों के पीछे एक ओर स्त्रियों और एक ओर गवैयों का दल है। निशान वाले हाथी पर दो झंडे हैं जिनमें से एक झंडे पर शेर तथा दूसरे पर चीनी प्रकार के फोनेक्स-पक्षी तथा ड्रेगन (गरुड़ तथा अज़गर) बना है। इस हाथी पर पीछे एक

निशानबाज बैठा है जो मुड़कर गवैयों को देख रहा है। चित्र की पृष्ठभूमि में भवन है जो चित्र के संयोजन मे विशेष महत्त्व का है। इसी प्रकार का एक चित्र जिसमें शाहजादा खुर्रम का विवाह उत्सव दिखाया गया है बहुत सुंदर है। यह चित्र इंडियन म्युजियम कलकत्ता मे सुरक्षित है।

शिकार के चित्र—शिकार के चित्रों में बादशाह ने बहुत रुचि प्रकट की। शिकार के चित्रों में शेर के शिकार के दो चित्र इंडियन म्युज़ियम कलकत्ता मे सुरक्षित हैं। इनमें से एक चित्र में बादशाह ने शेर को अपनी बन्दूक की गोली से मार दिया है और शेर को शाही दल चारों ओर से घेरे खड़ा है। दूसरे चित्र में बादशाह को शेर से अपनी सुरक्षा करते दिखाया गया है। बन्दूक की गोली की चोट खाते ही शेर बादशाह के हाथी की पीठ पर चढ़ गया है। बादशाह खाली बन्दूक से जख्मी शेर को डरा रहा है। उसके हाथी से उसका अंगरक्षक भाग रहा है, फीलवान डर से हाथी के सिर पर झुका जा रहा है, घुड़सवार सिपाही बादशाह की मदद के लिए आ गए हैं। इनमें से एक के पास भाला है। इस चित्र को देखने से प्रतीत होता है कि चित्रकार ने स्वयं इस घटना को देखा था इसी कारण सम्राट का भागता हुआ अंगरक्षक, शेर के झपटने की मुद्रा तथा हाथी की गति यथार्थ बन पड़ी है।

बोडलीयन पुस्तकालय के एक चित्र में मृगों का रात्रि के समय में आखेट दिखाया गया है-शिकारी झाड़ियों में छुपकर बैठे हैं और कमान संभाले हैं—उनके सामने हिरन आ गए हैं। चित्र का वातावरण सुंदर है। इस चित्र की पृष्ठभूमि में एक संत अपनी कुटी के द्वार पर बैठा बनाया गया है।

संतों के चित्र—संतों के सत्संगों से सम्बन्धित अनेक चित्र भी जहाँगीर ने बनवाये। इंडियन म्युज़ियम कलकत्ता मे 'रात्रि के समय साधुओं की गोष्ठी' का चित्र बहुत सुंदर है। इसमें पाँच साधु एक कुटी के सामने बैठे हैं—वातावरण अंधकारपूर्ण है। मोमबत्ती के झीने प्रकाश में पाँचो आकृतियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ रही हैं। इस चित्र पर यूरोपियन प्रभाव दिखाई पड़ता है।

पशु-पक्षी तथा पुष्पों के चित्र—बादशाह जहाँगीर को पक्षियों, पशुओं तथा पुष्पों के चित्र बनवाने का भी बहुत शौक था। जब कभी वह आश्चर्यजनक पुष्प या पक्षी देखता तो उनको अपने चित्रकारों से तस्वीर बनवाता था। जहाँगीर ने स्वयं ऐसे पक्षियों के रोचक वर्णन किए हैं। इस प्रकार के एक तुर्की-तीतर का बादशाह ने सुंदर वर्णन दिया है। इस तुर्की तीतर का चित्र कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार एक मोरनी का चित्र जो मंसूर नामक चित्रकार का बनाया हुआ है, सजीव एवं सुंदर है परन्तु आज यह चित्र पेरिस में है। उस्ताद मंसूर के बनाये चित्रों में कोयल, कौआ, चील, मुर्गी, तीतर, बटेर, चीनी तोते (Parakeet), हाथी, ऊँट, ज़ेबरा, जिराफ, बंदर, लंगूर, शेर, गैंडा, घोड़ा आदि के चित्र प्राप्त हैं। इसी प्रकार पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों के पुष्प, जंगली स्ट्राबेरीज़, नरगिस, गुलाब, चेरी, पोस्ता आदि के अनेक चित्र बनाये गए और इस प्रकार एक वनस्पति-विज्ञान तथा जीवविज्ञान सम्बन्धी चित्रों की पोर्टफोलियो या संग्रह तैयार हो गया। उस्ताद मंसूर का एक चित्र 'लालपुष्प' जो पीली

पृष्ठभूमि पर बना है, उल्लेखनीय है। बादशाह जहाँगीर स्वयं लिखता है—"कश्मीर की सीमा में जो पुष्प दिखाई देते हैं उनका हिसाब नहीं लगाया जा सकता और जो नादिर-उल असर उस्ताद मंसूर ने चित्रित किए हैं वे १०० से अधिक हैं।"

अब्दुल हसन—बादशाह जहाँगीर अब्दुलहसन को बहुत चाहता था। उसकी शैली ईरानी थी। उसके विषय में बादशाह ने स्वयं लिखा है कि—"उस दिन अब्दुलहसन चित्रकार, जिनको 'नादिर-उज़-ज़मा' की उपाधि से सम्मानित किया जा चुका था, ने मेरी तख्तपोशी (सिंहासन रोहण) की तस्वीर खींची, यह चित्र प्रशंसा के योग्य था, अतः उसको बहुत अधिक संरक्षण मिला .... इस समय उसका कोई प्रतिद्वन्दी या सानी नहीं है, यदि इस समय तक उस्ताद अब्दुस्समद या बिहज़ाद जीवित रहे होते तो उन्होंने उसके प्रति न्याय किया होता।"

बादशाह आगे लिखता है—"जब वह (जहाँगीर) स्वयं युवराज था तो अब्दुलहसन के पिता अकारिज़ा (हिरात निवासी) ने मेरी सेवाएँ स्वीकार कीं और अब्दुल हसन दरबार का खानज़ादा था। परन्तु उसके और उसके पिता के काम की तुलना नहीं की जा सकती (पिता चित्रों की अनुकृतियाँ बनाने के कार्य में कुशल था) वह अपने पिता से कहीं अच्छा है और उन दोनों को एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। मेरा उससे सम्बन्ध यह है कि मैंने उसकी परवरिश (पालन-पोषण) की थी। मैंने आरम्भिक समय से आज तक उसकी देखभाल की है, तब कहीं उसकी कला इस स्तर तक पहुँच सकी है और सत्य ही वह 'युगशिरोमणि' (नादिर-उज़-ज़मा) हो गया है।" उसका एक चित्र 'जामनगर के जामजसा' का मुखाकृति-चित्र, जो 'इंडियन बुक पेंटिंग' में लेखक कुहनिल तथा गोएट्ज़ ने प्रकाशित किया है, उत्तम है। उसका एक अन्य चित्र, जिसमें एक बैलगाड़ी या रथ को हल्की पीली पृष्ठभूमि पर बनाया गया है, बहुत सुंदर है। इस चित्र में रथ की नक्काशी, बैलों की गति तथा फारसी रेखांकन और चमकदार रंग उसकी अपनी विशेषता है। बैलों के सिर भयानक तथा बड़े हैं जो फारसी ढंग के हैं। उनकी पूँछों में बारीकी से बाल बनाये गए हैं। रथ पर सुनहरी नक्काशी का काम है तथा सवार मूँगिया वस्त्र और सारथी नीली पोशाक पहने हैं। रथ पर ही चित्रकार का नाम 'राकिम अब्दुल हसन' अर्थात् 'चित्र का लेखक या रचयिता अब्दुल हसन' लिखा है। इस प्रकार जहाँगीर ने जीवन सम्बन्धी चित्रों की ओर अधिक ध्यान दिया और चित्रकला के क्षेत्र को व्यापक बनाया।

यूरोपियन चित्र—जहाँगीर के समय में एक अन्य दिशा में चित्रकार ने अपना ध्यान मोड़ा वह था—यूरोपियन चित्रों की अनुकृतियाँ। जहाँगीर के दरबार में यूरोपियन व्यापारियों के द्वारा चित्र भी आने लगे थे। बादशाह ने चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार करायीं और यूरोपियन चित्रों का एक विशाल संग्रह बिशनदास ने १५८८ ई० में बनाकर तैयार किया।

जहाँगीर के आरम्भिक शासनकाल में 'कलीलावद-दिमनाह' की चित्रित प्रतिलिपि भी तैयार हुई। इस प्रति के पूर्ण होने का समय १६१० ई० रहा होगा। इस संग्रह में अधिकांश फारसी शैली के चित्र हैं और इस प्रतिलिपि को तैयार करने में अधिकांश फारसी चित्रकारों

(45)

ने कार्य किया। आरम्भिक काल में जहाँगीर ने फारसी कलाकारों को बुलाया और फारसी कला को अधिक महत्त्व दिया परन्तु कालान्तर में यह बात नहीं दिखाई पड़ती है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण—जहाँगीर अनोखे ही स्वभाव का व्यक्ति था। वह एक सुधारक, प्रकृतिवादी, आखेटक, कला संरक्षक, लेखक, इतिहासकार, सुरापान करने वाला, न्यायशील, प्रजावादी और क्रूर शासक था, परन्तु उसमें कला प्रेम प्रगाढ़ था। उसके दरबार में भारतीय ही नहीं यूरोपीय कला का भी समान स्थान था और उसके चित्रकारों ने 'हेवी मरियम' आदि के चित्रों की कई अनुकृतियाँ तैयार कीं। इस यूरोपियन कला का भारतीय मुगल कला पर प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु मुगल कला ने अपनी स्वतंत्र गति और निजत्व की भावना और मौलिकता को नहीं छोड़ा। इस समय मुगलशैली का अत्यधिक विकास हुआ। जहाँगीर एक महान प्रकृतिवादी सिद्ध हुआ। उस्ताद मंसूर, मनोहर तथा मिस्किन ने पशु-पक्षी, पुष्पों, वृक्षों और पत्तों के चित्रण में कमाल कर दिखाया।

ऐतिहासिक घटनाएँ तथा स्त्री चित्र—राजनीति से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का भी चित्रों में सुंदर रूप में अंकन मिलता है। उस्ताद शालीवाहन का बनाया एक चित्र इस प्रकार का सुंदर उदाहरण है। यह चित्र एक लम्बी पत्री के रूप में बना है। सर्वप्रथम आगरा के इस विज्ञप्ति पत्र की खोज गुजरात के सुविख्यात इतिहासकार श्री जिनविजय ने की। यह चित्र लगभग ७२ फुट लम्बा और १३ इंच चौड़ा है और दो भागों में विभाजित है। उस्ताद शालीवाहन जहाँगीर के दरबार का एक चित्रकार था, परन्तु वह पवित्र और धर्म श्रद्धालु व्यक्ति था। उसने स्वयं इस चित्रित पत्री को आचार्य विजयसेन सूरी, जो उस समय काठियावाड़ के देवापट्टम थे, के लिए शुभकामनाओं सहित भेंट में भेजा था। १६१० ईसवी में श्री विजय सेन जी के शिष्य श्री विवेक हर्ष और उदय हर्ष ने राजा रामदास के साथ जहाँगीर के दरबार (आगरा) में यह निवेदन किया कि पर्युषण (Paryushana) के आठ दिन के व्रतों के समय में पशु-वध निषेध कर

रेखाचित्र सं० १७
सम्राट जहाँगीर (मुगल शैली)

दिया जाय। इस पत्रीनुमा चित्र का विषय यही ऐतिहासिक घटना है। प्रथम भाग में जहाँगीर ऊपर के भाग में एक छज्जे पर बैठा है और राजा रामदास, पं० विवेक हर्ष तथा पीछे खड़े पं० उदय हर्ष का परिचय दे रहे हैं। नीचे के भाग में अनेक तुर्की, अरबी तथा एक अंग्रेज़ प्यादे (पगड़े) और अन्य कर्मचारी यथास्थान खड़े हैं। चित्र के दूसरे भाग में गुरु विजयसेन गद्दी पर बैठे हैं और विवेक हर्ष तथा उदय हर्ष पशु निषेध आज्ञा का शाही फ़रमान अपने गुरु को दे रहे हैं। इस चित्र में विजयसेन तथा अन्य पुजारियों के चित्र हैं जो सफेद वस्त्र धारण किये हुए चित्रित हैं। चित्र के नीचे के भाग में एक व्यक्ति नाच रहा है, साथ में बराबर में खड़ा व्यक्ति मंजीरा बजा रहा है। पीछे तीन श्वेत वस्त्र धारण किए स्वास्तिका चिन्ह-धारणी देव-सेविकाएँ बैठी हैं। इनके सामने साधारण स्त्रियाँ चावल डाल रही हैं और पूजा कर रही हैं।

उपरोक्त चित्रावली के रंग स्पष्ट, आकर्षक, प्रभावशाली और कोमल हैं, चित्र शैली मुगल है, परन्तु इनचित्रों को हरी, पीली, लाल तथा नीली पृष्ठभूमि पर अंकित किया गया है। इस चित्र में जनसाधारण (सामान्य वर्ग) तथा दरबार (उच्च वर्ग) दोनों का सुंदर अंकन है।

जहाँगीर के समय में निश्चित रूप से स्त्री चित्र भी बनाये गए। अकबर के समय में उसकी माँ हमीदा बानो बेगम की तथा जहाँगीर के समय में नूरजहाँ की शबीहें तैयार हुईं। जहाँगीर की स्वयं की अनेक शबीहें तैयार की गईं (देखिए रेखाचित्र—सम्राट जहाँगीर) जो पर्याप्त यथार्थ रेखांकन पर आधारित है।

जहाँगीरकालीन भित्तिचित्र—जहाँगीर ने भित्तिचित्र भी बनवाये और ये चित्र १६[illegible] ई० में विलियम फिन्च ने लाहौर दुर्ग में देखे थे। इन चित्रों में नूरपुर का राजा बासु भी सभासदों के साथ चित्रित किया गया था। इसके अतिरिक्त लाहौर के महलों में भी भित्तिचित्र बनाये गए। इन चित्रों में ईसाई, यूरोपियन तथा अन्य विषय अंकित किये गए।

जहाँगीरकालीन चित्रों की विशेषताएँ—जहाँगीरकालीन चित्रकला ने एक नवीन मो[illegible] ग्रहण किया और उसमें परम्परा के स्थान पर यथार्थता आ गई और इस समय के चित्रकार ईरानी प्रभाव से मुक्त हो गए। जहाँगीरकालीन चित्रों में बारीकी, सफाई, शारीरिक गठनशीलता तथा वस्त्रों आदि की बनावट में बहुत परिमार्जन दिखाई पड़ने लगता है। वस्त्रों की बनावट में शिकनों आदि का विशेष ध्यान रखा गया है। वस्त्रों में वायु के प्रकम्पन का बोध होता है। चेहरों आदि में गोलाई लाने के लिए बारीक रेखाओं के द्वारा खतपरदाज़ या छोटे-छोटे बिन्दुओं को लगाकर बिन्दु-परदाज़ लगाया गया है जिसे 'दाना परदाज़' कहते हैं। अकबरकालीन चित्र सपाट हैं परन्तु जहाँगीरकालीन चित्रों में शारीरिक गठनशीलता, गोलाई और उभार लाने के लिए छाया तथा प्रकाश का कोमल प्रयोग किया गया है।

पशुओं तथा पक्षियों की बनावट में अत्यधिक यथार्थता है। हाथियों, घोड़ों, चि[illegible] मोरों तथा अन्य पशु-पक्षियों के चित्रण में अत्यधिक स्वाभाविकता है। हाथियों के चि[illegible] में अजन्ता की परम्परा का आभास होता है।

जहाँगीरकालीन चित्रों में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का सुंदर प्रयोग है। इंडियन म्यूजियम कलकत्ता में एक घुड़सवारों के दल का चित्र लगता है, अब वह पृष्ठभूमि से पीठ किए पृष्ठभूमि की ओर बायीं दिशा में तिरछा चक्रीय गति से जा रहा है। इस चित्र की पृष्ठभूमि के घुड़सवार छोटे बनाये गए हैं और बायीं ओर मुड़ते हुए होने के कारण उनकी पीठ न होकर क्रमशः वाम अंग दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार न केवल दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य वरन् स्थितिजन्य-लघुता का भी सुंदर प्रयोग दिखाई पड़ता है। जहाँगीरकालीन चित्रों में पृष्ठभूमि में दूर तक मरुस्थली पर्वतीय क्षेत्रों की प्रकृति बड़ी सूक्ष्मता से अंकित की गई है। यह प्राकृतिक दृश्य दिल्ली से अजमेर जाने वाले राजमार्ग के दृश्यों पर आधारित है।

इस समय के चित्रों में रेखाएँ बारीक, कोमल, लचकदार तथा प्रवाहपूर्ण और सजीव हैं। हल्के गुलाबी, सफेद, सोने तथा चाँदी के रंगों का उत्तम प्रयोग है। चित्रों में संगत और हल्के रंगों का प्रयोग होने लगता है। रंग आँखों को प्रिय लगने वाले और रत्नों के समान चमकदार हैं।

शाहजहाँ कालीन चित्र

जहाँगीर काल के चित्रों की विशेषताओं तथा कारीगरी की कुशलता के कारण जहाँगीर काल मुगल चित्रकला का पूर्ण यौवन काल है और उसका पूर्ण निजत्व तथा ओज इस समय तक विकसित हो उठता है। शाहजहाँ के काल में चित्रकला की अवनति आरम्भ हो जाती है, यद्यपि चित्रों का निर्माण उसी प्रकार होता रहा और उनकी संख्या भी वही रही, परन्तु चित्र की लिखावट में कमज़ोरी आ गई। शाहजहाँ ने अपनी शानशौकत तथा सभासदों के अनुशासन की ओर अधिक ध्यान दिया, इस कारण ही चित्रकला की अवनति आरम्भ हो जाती है। यद्यपि चित्रों का निर्माण उसी प्रकार होता रहा और चित्रों की संख्या भी उतनी ही रही परन्तु चित्र की लिखावट तथा रंगों की प्रौढ़ता अदृश्य होने लगी।

वैभव सम्बन्धी चित्र—शाहजहाँ ने अपनी शानशौकत तथा सभासदों के अनुशासन की ओर अधिक ध्यान दिया, इस कारण चित्रकार की दृष्टि राजसी दरबारी भव्यता तथा दरबारियों के अदब-कायदों तक सीमित रह गई है। शाहजहाँ के समय में अधिकांश दरबारी चित्र बनाये गए। चित्रकार इन दरबारी अदब-कायदों में जकड़ता गया, परन्तु फिर भी दरबारी चित्रों के उत्तम उदाहरण प्राप्त हैं। इनमें से एक चित्र उदाहरण बोडोलीयन लायब्रेरी, ऑक्सफोर्ड में सुरक्षित है। इस चित्र में 'शाहजहाँ एक फारसी राजदूत का दीवाने-आम में स्वागत कर रहा है।' सम्भवतः यह घटना १६२८ ई० में शाहजहाँ के सिंहासनारोहण के पश्चात् शीघ्र ही घटी। इस समय शाहजहाँ की आयु ३६ वर्ष की थी जो चित्र में भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस राजदूत को शाहजहाँ के दरबार में फारस के शाह-अब्बास के पुत्र शाह सफी ने भेजा था। इस दल के साथ उसने पाँच अरबी घोड़े तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ भेजी थीं। इस चित्र में शाहजहाँ दिल्ली के दीवाने आम में ऊँचे छज्जे पर बैठा है। नीचे फारसी

लोगों का दल है और फारसी राजदूत माथे तक अपना दाहिना हाथ उठाकर सलाम करता हुआ चित्रित किया गया है। उसके अन्य सलाहकार उसके साथ हैं, पीछे एक पंक्ति में कुछ लोग थालों में उपहार लिये खड़े चित्रित हैं, नीचे की ओर पाँच घोड़े भी चित्रित हैं। चित्र में मुगल अधिकारी यथास्थान पर खड़े बनाये गए हैं। मुगल तथा फारसी लोगों की पोशाकें भिन्न हैं। इस चित्र में राजदूत बिना झुके सीधे खड़े होकर सलाम कर रहा है जो फारसी ढंग है जिसको भावुक सम्राट शाहजहाँ ने अपनी अवहेलना का प्रतीक माना था।"

शाहजहाँ का एक अन्य चित्र, जिसमें शाहजहाँ मयूर सिंहासन या तख्ते-ताऊस पर बैठा है, बैरन म्युरिस रोथ्सचाइल्ड संग्रह, पेरिस में सुरक्षित है। इस चित्र में भी सम्राट को युवक रूप में दिखाया गया है। यह चित्र अनुमानतः १६३० ई० का है। मयूर सिंहासन की छत, जो आयताकार गुम्बद के आकार की है और चार स्तम्भों पर रुकी है, के ऊपर मोर पक्षी बनाये गए हैं। सारा सिंहासन बहुमूल्य रत्नों से खचित है। इस मयूर सिंहासन के सम्बन्ध में जो समसामयिक यूरोपियन यात्रियों के वर्णन प्राप्त हैं उनमें चित्र से किंचित अंतर है। यह सिंहासन उस समय के मूल्य से छः स्टर्लिंग पाउन्ड्स का था।

राजदूतों के चित्र—एक चित्र एन० सी० मेहता ने ('स्टडीज़ इन इंडियन पेंटिंग'—फलक ३९) में प्रकाशित किया है जिसमें एक यूरोपियन राजदूत को शाहजहाँ के दरबार में चित्रित किया गया है। इस चित्र में शाहजहाँ दीवाने खास में बैठा है—दो शहजादे (युवराज) उसके पीछे और दो शहजादे सामने बैठे हैं। सम्भवतः यह दारा, शुजा, मुराद और औरंगजेब हैं। इन शहजादों के कानों में छोटी बालियाँ हैं जिससे अनुमान होता है कि यह शाहजहाँ के आरम्भिक शासनकाल का चित्र है। यूरोपियन राजदूत अपने साथियों सहित बादशाह के सम्मुख खड़ा है। यह आश्चर्य की बात है कि इस राजदूत-दल में स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनों ही हैं। शायद यह पुर्तगाली राजदूत का दल है जो दिल्ली के सम्राट से व्यापार के लिए विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए आया था। यह चित्र सुंदर है और इसमें भी अवनति या ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते हैं और रंग-संगत तथा कोमल हैं।

पूर्वजों तथा सम्मानित व्यक्तियों के चित्र—एक उदाहरण में अकबर का व्यक्ति चित्र है जो अपने ही ढंग का है। यह चित्र एम० कारटियर संग्रह, पेरिस में सुरक्षित है। इस चित्र में वृद्ध अकबर को दिखाया गया है। इस चित्र के ऊपर हाशिये में दो फरिश्ते तथा बायीं ओर तीन अनुचर और नीचे तीन हिरन बने हैं। सम्राट के पीछे प्रकाश पुंज (प्रभा मंडल) का प्रयोग किया गया है। शाहजहाँ के समय में फकीर उल्लाहखान प्रधान चित्रकार था। इस चित्रकार का एक सुंदर चित्र बैरन म्युरिस रोथ्सचाइल्ड संग्रह, पेरिस में सुरक्षित है। इस चित्र में फकीर उल्लाह खान के लिए शानदार मुगल अधिकारी के रूप में चित्रित किया गया है। इस चित्रकार के बनाये हुए चित्र बहुत कम प्राप्त हैं, सम्भवतः वह केवल निरीक्षण कार्य करता था। इस चित्र के ऊपर, नीचे तथा बायीं ओर हाशिये में सात मानवाकृतियाँ हैं जो उसके सहायकों के छवि-चित्र हैं—इनमें तीन हिन्दू हैं।

[illegible]और हाशिम व्यक्ति चित्रण या छवि चित्रण में इस समय का कुशल और विख्यात चित्रकार था। सम्भवतः उपरोक्त चित्र मीर हाशिम और उसके सहायकों की उपलब्धियाँ हैं। [illegible] एक चित्र, जिसमें 'मुगल सरदार' चित्रित है, एम० क्लिमोंटी संग्रह, पेरिस में प्राप्त है।

रेखाचित्र सं० १८

दारा शिकोह (मुगल शैली)

दारा शिकोह का चित्र प्रेम—शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र शहजादे दारा शिकोह ने भी अपने चित्रकार नियुक्त किए। यह प्रतिभा सम्पन्न शहजादा कलानुरागी तथा संग्रहकर्ता था। उसके निजी बहुमूल्य चित्रों के एलबम के चित्रों या चित्राधार से उसका कलाप्रेम स्पष्ट है। इस एलबम के चित्रों पर दारा के हस्ताक्षर हैं और आज ये चित्र संग्रह इंडिया आफिस लायब्रेरी, लंदन में सुरक्षित हैं। युवराज दारा शिकोह का एक सुंदर मुखाकृति चित्र जो हुनर नामक चित्रकार के द्वारा बनाया हुआ है आज प्राप्त है। (देखिए रेखाचित्र—१८ दारा शिकोह) इस युवराज को औरंगज़ेब के षड्यन्त्र के कारण लड़ाई में हारना पड़ा और सिंध की ओर भागना पड़ा और वहीं उसको उसकी एक सबसे अधिक प्रिय बेगम के प्यास से तड़प-तड़पकर मर जाने का समाचार मिला—जिससे युवराज अचेत होकर गिर पड़ा था। उसके उपरोक्त एलबम के मुख्य पृष्ठ पर सुनहले भाग में एक लेख है जो इस प्रकार है—"यह संग्रह उसकी सबसे प्रिय और निकट मित्र सम्भ्रान्त महिला नादिरा बेगम को सम्राट शाहजहाँ के पुत्र युवराज मुहम्मद दारा शिकोह के द्वारा भेंट दिया गया।" दारा शिकोह के एलबम में अनेक सुंदर चित्र प्राप्त हैं, उनमें से एक चित्र में 'दो बतखें' तथा दूसरे में 'नाईट हिरोन' (Night Heron) पक्षी है। यह चित्र बहुत सुंदर है। दारा शिकोह का घुड़सवार के रूप में एक चित्र इंडियन म्यूज़ियम, कलकत्ता में प्राप्त है जो १६२५ ई० का है। इसी एलबम में युवराज शुजा का एक रेखाचित्र है। इस चित्र में उसको १६ वर्षीय किशोर के रूप में दिखाया गया है।

शाहजहाँकालीन गोष्ठियों के चित्र—शाहजहाँकालीन शैली का एक चित्र बाबू [illegible]राम साहु संग्रह, बनारस में है। इस चित्र में एक 'पवित्र गोष्ठी' दिखाई गई है। इसमें

चार पवित्र मनुष्य किसी गूढ़-ग्रंथी में उलझे विचार-विमर्श कर रहे हैं। इस चित्र में एक छायादार वृक्ष के नीचे चाँदी जैसे रंग की सफेद दाढ़ी तथा बालों वाला एक वृद्ध बैठा है, उसके सामने एक उच्च मुगल पदाधिकारी बैंगनी जामा और ऊपर से फूलदार सफेद कोट पहने भव्य ढंग से बैठा है। पास ही एक युवराज कन्धे पर सरोद रखे बजा रहा है और वृद्ध की ओर देख रहा है। उसके सामने दूसरी ओर एक तपस्वी हिन्दू संन्यासी पद्मासन लगाए बैठा है जो गेरुआ धोती लपेटे है। इस चित्र के पीछे हाजी मुहम्मद करबलाई की १२१२ हिजरी की मोहर अंकित है।

इस समय के चित्रों के हाशिये में बादलों से निकलती अनेक देवदूत या पंखदार मानव आकृतियों (परियों) का आलेखन दिखाई पड़ता है।

शाहजहाँ ने अपने समय के इतिहास 'बादशाहनामा' की सचित्र प्रति तैयार कराई। इसमें कई सौ चित्र थे परन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रति तितर-बितर हो गई और इसके पृष्ठ अनेक संग्रहालयों में पहुँच गए हैं। इसका एक विशेष भाग ब्रिटेन के विंडम्बसर महल के संग्रह में प्राप्त है। शाहजहाँ के समय से यवन सुंदरियों तथा बेगमों के चित्र भी बनाये जाने लगे, जो प्राप्त हैं। रंगमहल और कामक्रीड़ा या रति सम्बन्धी दृश्यों पर आधारित चित्र जो जहाँगीर के समय में प्रचलित हो चुके थे, अब अधिक बनाये जाने लगे।

शाहजहाँ कालीन चित्रों की विशेषताएँ—शाहजहाँ के समय के चित्रों में एक विकसित कलाशैली के रूढ़िवादी ढंग से प्रयोग की परिपाटी प्रचलित होती दिखाई पड़ने लगती है और क्रमशः मुगल विशेषताएँ समाप्त होने लगती हैं और अवनति के चिन्ह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं।

शाहजहाँकालीन चित्रों में विशेष रूप से रेखांकन बेजान और शिथिल पड़ने लगता है तथा हाथ, पैर और शरीर की भंगिमाओं से जकड़ और कठोरता आने लगती है।

चमकदार रंगों के साथ सोने और चाँदी के रंगों का प्रयोग बहुत अधिक होने लगता है जिससे चित्रकार की कमजोरी स्पष्ट पता लगती है। चित्रों की रेखाएँ काली तथा कठोर हो जाती हैं। चित्रों की खुलाई तथा साया लगाने का काम काली स्याही से किया जाने लगता है।

अधिकांश चित्रों में दरबार के दृश्यों का अंकन दिखाई पड़ता है, जिनमें दरबारियों को जकड़े हुए अदब-कायदों में खड़ा दिखाया गया है। इस प्रकार नियमों में जकड़कर चित्र निर्जीव हो गए हैं और चित्रों में यूरोपियन प्रभाव भी अधिक आने लगता है। चित्रों में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य तथा त्रिआयामी प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। चित्रों के हाशियों में जहाँगीरकालीन आलेखनों का प्रयोग दिखाई पड़ता है, लेकिन कहीं-कहीं देवदूत या पंखदार आकृतियों का प्रयोग मिलने लगता है। चित्रों में विवरणों की अधिकता है और रंगों में विशेषतया मीनाकारी आदि पर अधिक ध्यान

वेश-भूषा—मेवाड़ शैली में पुरुषों को घेरदार जामा पहने तथा कमर में पटका लगाये दिखाया गया है। यह पटका लम्बा है और रंगीन पट्टियों से सजा है। कभी-कभी इस पटके में ज्यामितिक अलंकरण का प्रयोग किया गया है। पगड़ियों की बनावट सुंदर है और जहांगीरकालीन मुगल पगड़ियों से मिलती-जुलती है। आरम्भिक चित्रों में ढीली पगड़ियाँ बनायी गई हैं। पुरुषों को प्रायः घेरदार जामा पहने चित्रित किया गया है। इन चित्रों में चाकदार जामे का प्रयोग कम दिखाई पड़ता है। स्त्रियों को फूलदार आलेखनों से युक्त कपड़े, चोलियाँ तथा लहंगा पहने चित्रित किया गया है। स्त्रियाँ ऊपर से पारदर्शी आँचल या ओढ़नी ओढ़े हैं। स्त्रियों को ग्रीवा, कमर, भुजाओं तथा कलाइयों में काले फुंदने तथा आभूषण पहने बनाया गया है। लहंगों पर भी प्रायः सुंदर बेल-बूटे आदि बनाये गए हैं।

भवन—चित्रों की पृष्ठभूमि या मुख्यभाग में योजना को ठोस बनाने के लिये भवन का प्रयोग भी किया गया है। इन भवनों के अंदर अकबरकालीन मुगल-शैली का प्रयोग है। भवनों के शिखर गुम्बददार हैं और उनके साथ छज्जे तथा चबूतरे भी बनाये गए हैं। इन भवनों के चित्रण में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का सामान्य ढंग से प्रयोग किया गया है। प्रायः ये भवन सफेद रंग से बनाये गए हैं।

हाशिये—चित्रों के हाशियों को प्रायः लाल या पीली सादा पट्टियों से बनाया गया है। राजस्थानी चित्रकार ने मुगल चित्रों के समान हाशिये में बेल-बूटे इत्यादि नहीं बनाये हैं।

रेखाचित्र सं० २१

यौवन की अंगड़ाई

(उदयपुर भित्तिचित्र, राजस्थानी शैली अट्ठारहवीं शताब्दी)

कृष्ण का स्थान—मेवाड़ शैली के चित्रों में कृष्ण के चित्रण को प्रमुखता दी गई। प्रायः नायिक भेद, राग-रागिनी चित्रावली या रागमाला चित्रों में कृष्ण और राधा को आदर्श प्रेमी तथा प्रेमिका का रूप दिया गया है। कृष्ण तथा गोपियों की लीलाओं के में भी कृष्ण को महान प्रेमी का रूप दिया गया है।

सामाजिक जीवन—यद्यपि मेवाड़-शैली के चित्रों में जीवन की झाँकी नहीं है, पर भागवत् पुराण तथा रामायण के चित्रों में समसामयिक रीति-रिवाज, पहनावा तथा ग्रा जीवन का पूर्ण समावेश है। चित्रकार के द्वारा अंकित ग्राम्य जीवन, दरबार, जुलूस, वि उत्सव, संगीत-नृत्य, अन्तःपुर, युद्ध तथा आखेट सम्बन्धी दृश्यों के चित्रों से तत्का राजस्थानी जीवन पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश पड़ता है।

आरम्भिक मेवाड़ कला ने कालान्तर में पर्याप्त विकास किया, यद्यपि उसमें मुगल-क जैसा यथार्थ रेखांकन तथा बारीकी नहीं है और रंगों में भी मुगल चित्रों के सम सौफियानापन (सुफयानापन) नहीं है, फिर भी इस शैली में आलंकारिकता, चटक वर्ण-योज तथा संयोजनक आकर्षक है।

बूंदी-कोटा की चित्रकला

(बूंदी-कोटा शैली)

बूंदी की स्थिति एवं इतिहास—बूंदी में पहले हाड़ा वंश के राजपूत राजाओं का राज्य इस राज्य की सीमा उत्तर में जयपुर तथा टोंक पश्चिम में मेवाड़, दक्षिण में मालवा सुदूर दक्षिण में चम्बल नदी से मिलती थी। इस राज्य की चित्रकला के उदाहरण मुगल के उदय के साथ प्राप्त होते हैं।

बूंदी राज्य की स्थापना सम्वत् १३६८ में राव देवाजी ने अपने बल, वैभव से की बूंदी का नाम एक मीना सरदार बुन्दा के नाम पर पड़ा।" इस राज्य का महत्व रा सुरजन सिंह (१५५४-१५८५ ई०) से आरम्भ होता है। राओ सुरजन सिंह ने १५५७ ई० १५८५ ईसवी के मध्य मेवाड़ की अधीनता त्याग दी और वह मुगलों के अधीन हो गया १५६६ ई० में उसने मुगलों के सम्मुख रणथम्भौर के दुर्ग में शस्त्र डाल दिए। राओ सुर सिंह का पौत्र रतन सिंह (१६०७-१६३१) जहाँगीर के दरबार में सम्मानित हुआ। जहाँगी उसको 'सर बुलंदराय' और 'रामराज' की उपाधियाँ प्रदान की और उसको दक्षिण लड़ाइयों में मुगल सेना के साथ भेजा। इसी समय में बूंदी का दक्षिण से सम्बन्ध स्था हुआ और बूंदी कला पर दक्षिणी कला का प्रभाव पड़ने लगा।

परम्परा के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि शत्रुशाल (छत्रशाल) (१६३१- ई०, ने अपने दरबारी चित्रकार नियुक्त किए। उसके गद्दी से उतरते ही शाहजहाँ ने जागीर उसके भाई माधवसिंह को सौंप दी और इसमें कोटा भी सम्मिलित कर दिया इस प्रकार अट्ठारहवीं शताब्दी में कोटा भी बूंदी शैली का केन्द्र बन गया। शत्रुशा

उत्तराधिकारी भावसिंह तथा अनुरुद्ध सिंह दक्षिण के आक्रमणों में मुगलों के उन छटे हुए योद्धाओं में से थे जो दक्षिणी राज्यों के विरुद्ध लड़े। परन्तु कोटा के भीमसिंह (१७०५-१७२० ई०) ने १७७९ ई० में पुनः बूंदी राज्य को बुद्धसिंह से छीन लिया और बुद्धसिंह को बूंदी का राज्य छोड़कर भागना पड़ा। बुद्धसिंह का उत्तराधिकारी उमेद सिंह १७४८ ई० में मराठा सहायता से ही पुनः बूंदी में स्थापित हो सका। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय हुआ और हाड़ा राजपूतों का बूंदी राज्य भी ब्रिटिश सत्ता के अधीन हो गया। अंग्रेज अधिकारियों ने विष्णुसिंह (१७७३-१८२१ ई०) को बूंदी का शासक बना दिया और उमेद सिंह (१७७७-१८१९ ई०) को कोटा का शासक बना दिया।

बूंदी शैली के चित्र—बूंदी शैली के चित्रों का विकास रागनी चित्रों से होता हुआ दिखाई पड़ता है क्योंकि इस शैली के आरम्भिक चित्र उदाहरण 'रागमाला चित्रावली' के भाग हैं। आरम्भिक शैली का एक उदाहरण 'राग दीपक' का चित्र है जो भारत कला-भवन, काशी में सुरक्षित है। दूसरा उदाहरण 'रागनी भैरवी' का चित्र है जो नगरपालिका म्यूजियम इलाहाबाद में सुरक्षित है। इस चित्र में मेवाड़ की परम्परागत शैली और मुगल-शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अनुमानतः यह उस समय का चित्र है जब बूंदी शैली अपना निजी रूप धारण कर रही थी। इन चित्रों का रंग सरल है परन्तु चटक रंगों के कारण चित्र प्रभावपूर्ण हैं। इन चित्रों में चेहरे की बनावट मेवाड़-शैली के चित्रों के समान भारीपन लिए है। मानवाकृतियों में नाक की बनावट नुकीली है जो अपभ्रंश शैली के चित्रों के समान है। आँखों को दो वक्रों से एक कमल पंखुड़ी के समान बनाया गया है, चिबुक कुछ छोटी है परन्तु दोहरी है जिससे इन चित्रों के समय का अनुमान लगाया जा सकता है। यह प्रवृत्ति सत्रहवीं शताब्दी के मेवाड़ी चित्रों में भी दिखाई पड़ती है, अतः इन चित्रों का समय सत्रहवीं शताब्दी का आरम्भिक भाग होना चाहिए। 'रागनी भैरवी' के चित्र में, जो सम्भवतः १६२५ ईसवी (राओ रत्नसिंह काल) का है कुछ विकसित शैली दिखाई पड़ती है। अतः निश्चित रूप से इस शैली का जन्म लगभग पचास वर्ष पूर्व हो चुका होगा। परन्तु इस समय के उदाहरण प्राप्त न होने के कारण इस शैली को सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थ चरण में विकसित हुई मानना पड़ता है।

बूंदी शैली में कुछ ऐसी परम्परागत विशेषताएँ हैं जो पर्याप्त समय तक अपना प्रभाव जमाये रहती हैं।' इन विशेषताओं के आधार पर ही इन चित्रों में घने दृश्य का चित्रण और उसका ध्यानपूर्वक अंकन किया गया है। आकाश में लाल रंग का प्रयोग जो रागनी भैरवी के चित्र में भी है, तथा जल से उठती हुई चंचल लहरों की स्थिति चित्रित करना मेवाड़-शैली की विशेषताएँ हैं। वृक्षों तथा पुष्पों को सरल और आलंकारिक रूप में गहरी पृष्ठिका पर सफेद मिश्रित रंग से बनाया गया है। 'रागदीपक' वाले चित्र में पुरुषों का पहनावा सपाट पतली पगड़ी, चक्करदार और नोक का जामा और कमर में संकरा पटका है, जो अकबर जहाँगीरकालीन है परन्तु कार्ल खण्डालावाला के अनुसार ये चित्र १६६० ई० से १६९० ई० के मध्य के हैं, क्योंकि इनमें जो मेवाड़ी विशेषताएँ हैं वे सत्रहवीं शताब्दी के मध्य मेवाड़ी कला में प्रचलित थीं।

विशेषतः बूंदी चित्रशैली की आकृतियों में मेवाड़ी प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। परन्तु बूंदी शैली के चित्रों में कारीगरी बहुत उत्तम है, चेहरों में कोमलता भी है। आकृतियों के चेहरों में गोलाई लाने के लिए सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। चेहरे अनुपात में छोटे बनाये गए हैं और आँखों के पास आँखों के गढ्ढों में गहराई दिखायी गई है। इस समय के कुछ सुंदर चित्रों के उदाहरण प्राप्त हैं—जिनमें 'पीठिका पर नायक और नायिका' (१६८२ ई०—श्री जी० डी० गुजराती संग्रह, बम्बई), 'प्रेमी और प्रेमिका द्विज का चाँद देखते हुए' (१६९८ ई०—प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई) तथा 'परिचारिकाओं सहित रानी' (सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई) महत्त्वपूर्ण हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बूंदी शैली का पूर्ण विकास होता है और इस समय में अधिक चित्रों का निर्माण हुआ। इस शैली में अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक है परन्तु कम कारीगरी से ही प्रभाव सुंदर बन पड़ा है। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बने चित्रों में कारीगरी का यह स्तर गिर जाता है और कारीगरी की कुशलता और दक्षता कम होती जाती है। मानवाकृतियों के शरीर में भूरे, मिश्रित लाल रंग के स्थान पर हल्के गुलाबी रंग का प्रयोग किया जाने लगता है। बूंदी के चित्रों में सादा पृष्ठभूमि के ऊपर भारी छायादार टीले और इन्द्रधनुषी वर्ण का आकाश जिसमें घुमड़ते हुए लाल, काले, नीले तथा सुनहरी बादल के टुकड़ों को चित्रित किया गया है। अनेक चित्रों में एक चश्म चेहरे की छाया को गहरे रंग से बनाया गया है जिससे चेहरा सरलता से उभर जाए। आरम्भिक चित्रों में यह छाया सुकोमल है और बारीकी तथा कारीगरी के कारण दृष्टिगोचर नहीं होती, परन्तु बाद के चित्रों में यह छाया कठोर और भद्दी हो जाती है। पृष्ठभूमि साधारणतः पुष्पित लताओं से आच्छादित वृक्षों के झुन्डों से बनायी गई है। इस समय के उदाहरणों में 'राओ सुरजनसिंह के हाथी—'भालेराओ और आनिदा' (१७२५ ई०), जो संभवतः पहले के किसी प्राचीन चित्र की अनुकृति है तथा 'ग्रीष्म में हाथी' (१७५० ई०), 'काँटा निकालती स्त्री' तथा 'स्नानते' (१७७५ ई०), अट्ठारहवीं शताब्दी की बूंदी कला के सुंदर चित्र-उदाहरण हैं, जो प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में सुरक्षित हैं। एक चित्र 'राधा और कृष्ण का मिलन' (अट्ठारहवीं शताब्दी) जो देसाई संग्रह, बम्बई में है, भावात्मक सौन्दर्य के कारण उत्तम है। यह चित्र अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य का है और इसमें बूंदी शैली की पूर्ण रोचकता आ गई है। इस शैली के अंतिम अच्छे चित्र उदाहरण १७५० ई० और १७८० ई० के मध्य के हैं। इस समय के चित्र स्वतंत्र और अच्छी शैली के हैं। ये चित्र अधिक चमकदार और सुंदर हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी के कुछ भद्दे चित्र भी प्राप्त हैं जो देखने में अपूर्ण हैं, शायद ये चित्र उन संरक्षकों या चित्र प्रेमियों के लिए बनाये गए जो अधिक कारीगरीपूर्ण चित्रों का मूल्य नहीं दे सकते थे। इन चित्रों में सपाट रंग और कभी-कभी गहरी सपाट पृष्ठभूमि का प्रयोग है और आकृतियों में गोलाई या कारीगरी की बारीकी लाने का प्रयास नहीं दिखाई पड़ता है। सम्भवतः यह सरल चित्र साधारण जनता की माँग को पूरा करने के लिए और अपनी आजीविका कमाने के लिए चित्रकारों द्वारा बनाये गए होंगे। बूंदी शैली में राग-रागनियों

नायिका भेद, क्रीड़ा, उद्यान-दृश्यों और कृष्ण-लीला चित्रों की अधिकता थी, परन्तु पशु-चित्रण भी प्रभावशाली ढंग से किया गया है, जिसमें यथार्थता और मुगल प्रभाव है।

बूंदी शैली की विशेषताएं—बूंदी शैली के चित्रों की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे इस शैली का एक अपना भिन्न रूप उभर गया है और राजस्थानी कला शैलियों में इस शैली का अपना महत्त्व है।

आकृतियाँ—बूंदी शैली के चित्रों में मानवाकृतियों के शरीर का रंग सुरा के समान लाल चित्रित किया गया है परन्तु परवर्ती चित्रों में इस रंग का स्थान गुलाबी रंग ने ले लिया। स्त्रियों के चेहरे मेवाड़ शैली के चेहरों से बहुत समानता रखते हैं। प्रायः चेहरे भारी हैं और लम्बी नोकदार नाक बनायी गई है, परन्तु आँख के पास कोमल छाया लगाकर गहराई दिखायी गई है। चिबुक दोहरी बनायी गई है और स्त्रियों के सिर शरीर के अनुपात में कुछ छोटे बनाये गए हैं। स्त्रियों के मुख पर उत्साह का बोध होता है। परन्तु मेवाड़ शैली की तुलना में स्त्री आकार अधिक कोमल तथा सुंदर है। मानव आकृतियों में आँखों को कमल पंखुड़ियों के समान दो वक्रों से बनाया गया है। पुरुष आकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट बनायी गई हैं तथा उनमें वीरता का भाव है।

प्रकृति—बूंदी शैली के चित्रों में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जल की चंचल लहरों को प्रायः गहरी पृष्ठभूमि पर सफेद रंग से लहरदार रेखाओं के द्वारा बनाया गया है, परन्तु बाद में चित्रों में यह प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती है और गहरी पृष्ठभूमि के स्थान पर चाँदी के रंग का प्रयोग होने लगता है, जिस पर महीन (बारीक) लहरदार रेखाओं से उठती लहरें बनायी गई हैं। वृक्षों के पत्तों को सफेद मिश्रित रंगों से गहरी हरी पृष्ठभूमि पर बनाया गया है, परन्तु बाद के चित्रों में गहरी रेखाओं से हल्की पृष्ठभूमि पर पत्तियाँ बनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, फिर भी साथ-साथ पहली पद्धति न्यूनाधिक रूप से चलती रहती है। वृक्षों को सुंदर, कोमल, लाल, पीले पुष्पों से पुष्पित तथा लतिकाओं से आच्छादित बनाया गया है। कर्कीय प्रदेश की जलवायु वाली प्रकृति को बूंदी शैली के चित्रों में एक सुंदर और संवेगात्मक रूप प्रदान किया गया है और प्रकृति को उद्दीपन का रूप दिया गया है।

बूंदी शैली के चित्रों में इन्द्रधनुषी आकाश का वर्ण विधान चित्र-योजना की एक भव्य विशेषता है। चित्रकार ने आकाश में बादलों को लाल तथा सुनहरे रंगों से चित्रित करके आकाश में इन्द्रधनुषी रंगों की आभा बिखेर दी है। कभी-कभी आकाश में घनाच्छादित संध्याकालीन प्रभाव बनाया गया है, जिसमें काले, गहरे भूरे, नीले बादल लाल और सुनहरी पृष्ठभूमि पर बिखरे बनाये गए हैं।

पृष्ठभूमि में अधिकांश वनस्पति से आच्छादित टीले संयोजित किये गए हैं। इन टीलों में छाया का प्रयोग भी किया गया है। सम्भवतः ये टीले बूंदी की स्थानीय प्रकृति का प्रभाव हो सकते हैं।

छाया तथा प्रकाश—बूंदी शैली के चित्रों में सुकोमल छाया के प्रयोग के द्वारा गोलाई लाने का सफल प्रयास किया गया है। छाया दिखाने के लिए महीन तथा पास-पास कोमल काली तिरछी रेखाओं या खत परदाज़ का प्रयोग किया गया है। इस छाया का प्रयोग मानव आकृतियों में प्रायः आँख के पास तथा कान के नीचे जबड़े के पास गहराई तथा गोलाई दिखाने के लिए किया गया है। कभी-कभी एक चश्म चेहरे को उभार देने के लिए चित्रकार ने आकृति की परछाई को गहरे रंग से बनाकर बाद में परछाई के किनारों को बारीकी के साथ नीचे की ज़मीन (पृष्ठभूमि) से मिलाकर कोमल प्रभाव उत्पन्न कर दिया है। इस प्रकार चेहरा पृष्ठभूमि से ऊपर उभर गया है परन्तु परवर्ती चित्रों में कारीगरी की अकुशलता और जल्दबाज़ी के कारण यह छाया भद्दी और कर्कश बन गई है।

पहनावा तथा आभूषण—इस शैली के चित्रों में पुरुषों को चक्करदार जामा, कमर में लम्बा संकरा पटका और सिर पर अधपट्टी पगड़ी बाँधे बनाया गया है। स्त्रियों को वक्षस्थली पर चोली, नीचे के भाग में लहंगा और सिर पर आँचल या ओढ़नी पहने दिखाया गया है। स्त्रियों की ग्रीवा तथा हाथों और कानों में आभूषण बनाये गए हैं। कपड़ों पर सोने के रंग की बूटियाँ भी बनायी गई हैं।

पशु-चित्रण—इस शैली के चित्रों में अलंकरण को प्रमुखता प्रदान की गई है परन्तु बाद के चित्रों में यह प्रवृत्ति कम होती गई है। पशुओं के चित्रण में विशेषतया हाथी का चित्रण बहुत यथार्थ, सशक्त और सजीव है। पशुओं के चित्रण में पर्याप्त यथार्थता एवं सुंदरता है।

भवन, साज-सामान तथा उद्यान—बूंदी शैली के चित्रों में समसामयिक भवन-पद्धति के भवन बनाये गए हैं, जिनमें अकबर तथा जहाँगीरकालीन मुगल भवन-कला का प्रभाव है और गुम्बदों से युक्त भवन बनाये गए हैं। भवनों के साथ चबूतरे तथा बरामदे (बारहदरी) बनाये गए हैं। उद्यानों में भी पीठिकाओं तथा फ़व्वारों इत्यादि के दृश्य बनाये गए हैं, जो सम्भवतः दक्षिणी कला का प्रभाव है। इन उद्यान दृश्यों के चित्रों की मुख्यभूमि में पौधों की पुष्पित पंक्तियाँ बनायी गई हैं। भवन सम्बन्धी साज-सामान तथा पात्रों इत्यादि में सोने-चाँदी के रंगों का प्रयोग किया गया है।

पृष्ठभूमि—चित्रकार ने कभी-कभी गहरी सपाट पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है, जिससे चित्र अधिक स्पष्ट और आकर्षक बन गया है परन्तु कुछ चित्रों में कारीगरी की न्यूनता के कारण भद्दापन भी आ गया है।

रंग—बूंदी शैली के चित्रों में सोने तथा चाँदी के रंगों का अधिक प्रयोग किया गया है। वैसे सामान्यतः बूंदी शैली के चित्रों में पीले तथा लाल रंग को प्रमुखता दी गई है। चित्रकार के प्रमुख रंग—पीला (प्योड़ी), लाल (सिन्दूर तथा संगरफ), हरा (जंगाल), सफेद (सफेदा), काला (काजल), नीला (नील तथा लाजवर्दी), गेरू, हिरौंजी तथा रामरज हैं।

परिप्रेक्ष्य—भवन इत्यादि के रेखांकन में साधारण दार्ष्टिक-परिप्रेक्ष्य दिखाई पड़ता है। वैसे आलेखन को महत्त्व देने के कारण दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का स्थान गौण रहा है।

दक्षिण शैली का प्रभाव—बूंदी शैली पर दक्षिण चित्रशैली का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। बूंदी शैली की स्त्री आकृतियाँ कुछ छोटी बनायी गई है जो दक्षिणी प्रभाव है। चित्रों में पुष्पित पौधे बनाये गए हैं और रात्रि के दृश्य बनाने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। रात्रि-दृश्यों के आकाश के चित्रण में सफेद बिन्दुओं से तारे तथा द्वीज का क्षीण चन्द्रमा दिखाया गया है। चित्र की मुख्य घटना का संयोजन चित्र के बायीं ओर किया गया है, जो सामान्यता दक्षिणी चित्रशैली की विशेषताएँ हैं।

चित्रों का विषय—बूंदी के चित्रकारों ने विशेष रूप से नायिका-भेद और राग-रागनियों के चित्र बनाये हैं, परन्तु नायिका-भेद चित्रकार का प्रिय विषय था। जनता ने भी नायिका-भेद में अधिक रुचि ली, इस कारण भी चित्रकार ने नायिका-भेद पर आधारित चित्रों को महत्त्व दिया। अन्तःपुर या रनिवास के भोग-विलासपूर्ण जीवन के दृश्य भी चित्रकार के प्रिय विषय रहे। 'भागवतपुराण' पर आधारित कृष्णलीला के चित्र बनाने की परम्परा सामान्य रूप से राजस्थान में चल ही रही थी, अतः बूंदी का चित्रकार भी इस ओर प्रवृत्त हुआ।

बूंदी के चित्रकारों की आजीविका विशेषरूप से साधारण जनता पर निर्भर थी, अतः चित्रकार ने जनसाधारण की रुचि के चित्र अधिक बनाए। चित्रकार ने कभी-कभी कम कारीगरी तथा कम परिश्रम से अच्छा प्रभाव उत्पन्न किया है। अधिकांश चित्रों में बूंदी का तत्कालीन सामाजिक जीवन किसी न किसी रूप में झलकता है।

बूंदी शैली लोकप्रिय थी और साधारणतः चित्रकारों को वणिकों, ठिकानेदारों, जागीरदारों, जमींदारों, पुरोहितों तथा पुजारियों आदि का संरक्षण प्राप्त था।

किशनगढ़ की चित्रकला
(किशनगढ़ शैली)

किशनगढ़ की स्थिति—किशनगढ़ का एक छोटा सा राज्य था। १६०९ ईसवी में जोधपुर (मारवाड़) के महाराणा उदयसिंह ने अपने आठवें पुत्र राजकुमार किशनसिंह को अपने राज्य के एक छोटे से भाग का शासक बना दिया। कालान्तर में इस छोटे राज्य या जागीर का विकास हुआ और किशनसिंह के नाम पर यह राज्य किशनगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। किशनगढ़ के शासक आरम्भ से ही मुगलों से मिल गए इस कारण उनको मुगल दरबार में अधिक सम्मान प्राप्त हुआ और उनके रहन-सहन की पद्धति, कला एवं संस्कृति पर भी यथेष्ठ मुगल प्रभाव पड़ा। किशनगढ़ के शासक राठौर वंशी थे।

किशनसिंह का जन्म १५७५ ईसवी में हुआ था और उसने १६०५-१६१५ ईसवी तक राज्य किया परन्तु बाद में वह जहाँगीर के दरबार में चला गया और मुगल दरबार में

(58)

१००० पैदल तथा ५०० घुड़सवारों का मनसबदार नियुक्त हुआ। जहाँगीर ने स्वयं उसकी 'जहाँगीरनामा' में प्रशंसा की है।

किशनगढ़ राजस्थान के मध्यभाग में स्थित है और इसकी सीमाओं पर एक ओर जयपुर तथा जोधपुर राज्य थे और दूसरी ओर अजमेर तथा शाहपुरा की सीमाएँ थीं। किशनगढ़ गुंडलियों झील के किनारे स्थित है। इस झील के किनारे-किनारे सामंतों तथा शासकों के अनेक महल तथा गढ़ियाँ बनी हैं जो मध्यकालीन युग की झाँकी प्रस्तुत करती हैं। झील में कलरव करते हुए पक्षियों की चहल-पहल तथा वानस्पतिक सौन्दर्य के कारण यहाँ एक मनोरम दृश्य उत्पन्न हो जाता है।

किशनगढ़ के राजाओं का कलाप्रेम—किशनगढ़ राज्य के संस्थापक राणा मुगल दरबार में रहे, और उन्होंने मुगल चित्रकारों और चित्रशालाओं को अवश्य देखा होगा, परन्तु किशनगढ़ में जो भी चित्र प्राप्त होते हैं वह किशनसिंह के राज्यकाल से लगभग एक शताब्दी बाद के हैं। किशनसिंह के चार पुत्र थे और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र साहसमल (१६१५-१६१८ ई०) गद्दी पर बैठा। साहसमल का एक सुंदर चित्र मिलता है जिसमें उसके शिकरे तथा शिकरेबाज अंकित किये गए हैं। सम्भवतः यह चित्र किसी प्राचीन समसामयिक चित्र पर आधारित है। साहसमल के पश्चात् उसके भाई जगमल (१६१८-१६२६ ई०) तथा हरिसिंह (१६२६-१६४० ई०) गद्दी पर बैठे। हरिसिंह का भी एक व्यक्ति चित्र मिलता है। अनुमानतः यह चित्र समसामयिक है। हरिसिंह के पश्चात् उसका भतीजा रूपसिंह (१६४३-१६५८ ई०) गद्दी पर बैठा। रूपसिंह ने रूपनगर बसाया और इस नवीन नगर को उसने अपनी राजधानी बना लिया। रूपसिंह के पश्चात् मानसिंह (१६५८-१७०६ ई०) तथा राजसिंह (१७०६-१७४८ ई०) गद्दी पर बैठे। राजसिंह के पश्चात् उसका पुत्र सावंतसिंह गद्दी पर बैठा। सावंतसिंह का जन्म १६६६ ई० में हुआ था। सावंतसिंह वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का अनुयायी था। रूपसिंह के समय में ही यह राजवंश वल्लभ-सम्प्रदाय का अनुयायी हो गया था। रूपसिंह के धर्मगुरु श्री गोपीनाथ थे, अतः वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार कल्यानराय किशनगढ़ के राजाओं के आराध्य देव बन गए। शाहजहाँ ने रूपसिंह की वल्लभाचार्य के प्रति श्रद्धा देखकर उसको वल्लभाचार्य का एक चित्र भेंट में दिया था जो अकबर के समय (१५५६-१६०५ ई०) में बना कहा जाता है।

सावंतसिंह (नागरीदास)—सावंतसिंह का जन्म १६६६ ई० में हुआ था। वह वैष्णव धर्म का अनुयायी था। सावंतसिंह के धर्मगुरु रणछोड़ जी थे जो गोपीनाथ जी के पौत्र थे। किशनगढ़ राज्य के राजा और युवराज ही नहीं बल्कि अन्तःपुर की रानियाँ तथा राजकुमारियाँ भी वल्लभाचार्य मत की अनुयायी थीं। राजसिंह की पुत्री राजकुमारी सुंदरीबाई ने मीरा के समान ही श्री कल्यानराय या कृष्ण भक्ति गीतों की रचना की।

राजसिंह के पुत्र सावंतसिंह का विवाह १७३० ई० में भोगढ़ा के यशवन्त सिंह की पुत्री से हुआ था। सावंतसिंह स्वयं संस्कृत, फारसी तथा मेवाड़ी भाषाओं का पंडित था। उसने

संगीत तथा चित्रकला का भी विधिवत अभ्यास किया था और वह एक अच्छा चित्रकार, कवि और लेखक था। उसने अपनी साहित्यिक रचनाएँ अपने उपनाम 'नागरीदास' के नाम से प्रस्तुत की हैं। किशनगढ़ दरबार के संग्रह में, एक रेखाचित्र है, जिस पर अंकित लेख से प्रतीत होता है कि यह चित्र सावंतसिंह के युवाकाल में, जब वह चित्रकला का अभ्यास करता था, उस समय बनाया था।[1] इससे स्पष्ट है कि उसने विधिवत चित्रकार के समान चित्रों की रचना की और केवल मनोरंजन तक ही उसका चित्रकला प्रेम सीमित न रहा। सावंतसिंह एक वीर योद्धा भी था। उसकी वीरता की अनेक कहानियाँ हैं। कहा जाता है कि उसने दस वर्ष की आयु में एक मस्त हाथी पर नियंत्रण किया। यह घटना अनुमानतः लगभग १७१९ ई० में घटी।

सावंतसिंह धार्मिक विचारों का व्यक्ति था और संतों के समान सरल जीवन व्यतीत करता था। उसमें युवराज जैसा ठाठ-बाट न था। वह एक अच्छा कवि था और हिन्दी कवियों में उसका स्थान उल्लेखनीय है। उसने 'बिहारीचन्द्रिका' लिखी और वृन्द, हरचरनदास, हीरामल, मुंशी कनीराम आदि की रचनाओं पर टीकाएँ रचीं और उसने अपना उपनाम नागरीदास रखा। परन्तु जहाँ एक ओर सावंतसिंह के जीवन में कृष्ण प्रेम था वहाँ शीघ्र ही एक सुंदरी आ बसी जिसका नाम बणीठणी जी (बनीठनी) था। वह 'बणीठणी' के रूप पर मोहित हो गया और उसका प्रेमी बन गया।" शीघ्र ही 'बणीठणी' उसकी दासियां या अनुचरी बन गई।" बणीठणी तथा नागरीदास को एक चित्र में एक साथ चित्रित किया गया। 'नागरीदास' ने अपनी रचनाओं में अपनी प्रेमिका का वर्णन राधा के रूप में किया परन्तु १७४६ ईसवी तक उसने बणीठणी का नाम अपनी रचनाओं में नहीं दिया। बणीठणी पर्दा नहीं करती थी। सावंतसिंह की विमाता उसको दिल्ली के अन्तःपुर से लाई थीं, वह दिल्ली के अन्तःपुर में एक सेविका (लौंडी) थी।

किशनगढ़ शैली का जन्म—किशनगढ़ की चित्रशैली का संस्थापक नागरीदास था। उसने ही सर्वप्रथम विधिवत रूप से किशनगढ़ में अपनी चित्रशाला स्थापित की और स्वयं उसने किशनगढ़ की चित्रकला में स्त्री आकृतियों को सुमधुर, कोमलांगी तथा मौलिक रूप प्रदान किया। वह दिल्ली के शहज़ादे फर्रुखसियर के पक्ष में था और इस कारण दिल्ली के दरबार में भी रहा। वहीं पर उसने मुगल चित्रकला का अध्ययन किया। किशनगढ़ के चित्रों में स्त्री-आकृतियों का विकास बणीठणी के रूप में हुआ और दूसरी ओर ब्रजभाषा साहित्य में प्रचलित उपमाओं के आधार पर राधा के सौन्दर्य का अंकन किया गया। यह सारा परिवर्तन नागरीदास और उसके चित्रकार निहालचन्द की कुशल बुद्धि का कार्य था। इस प्रकार किशनगढ़ के चित्रकारों ने सावंतसिंह के राज्यकाल में परम्परागत लोककला के मीन-नेत्र एवं गोल भारी चेहरे न बनाकर कमल और खंजन आकार के नेत्र, चाप के समान पतली भृकुटी, पतले सुकोमल अधर और लम्बी पतली नाक को लम्बे पतले चेहरे में बनाकर नारी के वीर भाव के स्थान पर माधुर्य तथा कोमलता, चंचलता तथा नारीत्व के भाव की प्रधानता को

60

दर्शाया। स्त्रियाँ लतिका के समान लचकदार, छरहरे शरीर वाली और लम्बी बनायी गई है। इस प्रकार किशनगढ़ की स्त्री आकृतियाँ, राजस्थान की अन्य कला शैलियों से सर्वथा भिन्न है। किशनगढ़ शैली अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थ भाग में आश्चर्यजनक रूप से उन्नति को प्राप्त हुई। यह निश्चित है कि इस शैली को सुंदरी बणीठणी के जीवित रूप से अत्यधिक प्रेरणा प्राप्त हुई और नवीन रूप विधान और कोमलांगी स्त्री आकृति की साकार कल्पना मिली। नागरीदास मुगल शहज़ादे फर्रुखसियर, (१७१३-१९ ई०) का अतिथि बना। अतः उसने फर्रुखसियरकालीन मुगल चित्रकला में विकसित परिवर्तनों को भी देखा था। उसने मुगल कला की विशेषताओं को देखकर अपने राज्य किशनगढ़ में भी कला का विकास किया। उसके समय में बने किशनगढ़ शैली के चित्र उत्तम हैं।

१७४७ ईसवी में राजा राजसिंह की किशनगढ़ में मृत्यु हो गई और नागरीदास के छोटे भाई बहादुर सिंह ने गद्दी के लिए युद्ध आरम्भ कर दिया। अतः सहायता प्राप्त करने के लिए नागरीदास को दिल्ली के दरबार में जाना पड़ा। वहाँ पर मुगल बादशाह अहमदशाह ने उसका स्वागत किया और सहायता प्रदान की। परन्तु नागरीदास की पराजय हुई और वह ब्रजधाम की तीर्थ यात्रा के लिए चला गया। ब्रज से नागरीदास और उसके पुत्र कुमाऊँ युद्ध (१७५१ ई०) में मराठों की सहायता करते रहे। मराठों की सहायता और मैत्री से नागरीदास के पुत्र सरदारसिंह ने १७५६ ई० में किशनगढ़ राज्य का आधा भाग प्राप्त कर लिया और इस प्रकार आधे राज्य का शासक बहादुर सिंह और आधे राज्य का शासक सरदारसिंह बन गया। नागरीदास ने संन्यास ग्रहण कर लिया और 'बणीठणी' के साथ नागरीदास ब्रज तथा मथुरा तीर्थाटन हेतु चला गया। नागरीदास की १७५४ ई० में तीर्थाटन करते हुए मृत्यु हो गई। नागरीदास ने पुष्टिमार्ग का संस्थापन किया और इस मार्ग के संवेगात्मक दार्शनिक पक्ष का किशनगढ़ पर गहरा प्रभाव पड़ा। बहादुर सिंह के पश्चात् बिरादसिंह, प्रताप सिंह, कल्यानसिंह, मोकामसिंह तथा अंतिम शासक पृथ्वीसिंह (१८४०-१८८० ई० तक) किशनगढ़ में राज्य करते रहे। इन सब शासकों के चित्र किशनगढ़ दरबार संग्रह में सुरक्षित हैं।

किशनगढ़ की चित्रकला—किशनगढ़ शैली मारवाड़ शैली का उन्नत और परिष्कृत रूप है। किशनगढ़ दरबार के पुराने लेखों से ज्ञात होता है कि किशनगढ़ राज्य में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक एक अच्छी चित्रशाला स्थापित हो चुकी थी। इस चित्रशाला में सुयोग्य चित्रकार कार्य कर रहे थे और राजा मानसिंह के शासनकाल में सम्भवतः दरबारी चित्रकार कार्य कर रहे थे, क्योंकि एक चित्र में युवराज मानसिंह को एक घोड़े पर सवार बर्छे से (भाले से) एक काले हिरन का शिकार करते दिखाया गया है। यह चित्र राजा मानसिंह के शासनकाल का होना चाहिए, परन्तु इस चित्र में अंकित लेख के अनुसार यह चित्र १६६४ ईसवी का है। इस चित्र की शैली मुगल-औरंगजेबकालीन शैली से साम्य रखती है। इस चित्र में युवराज की आकृति सुंदर है, परन्तु सावंतसिंहकालीन चित्रों की तुलना में यह चित्र हेय है। राजा मानसिंह ने कुशल चित्रकारों की एक दरबारी

चित्रशाला का वर्णन दिया है। यह चित्रकार सत्रहवीं शताब्दी और उससे पहले कार्य कर रहे थे। 'दरबार-संग्रह' में राजा साहसमल (१६९५-१६९८ ई०) के चित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह शैली अट्ठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में सुचारु रूप से चल रही थी। इस समय की किशनगढ़ शैली पर फर्रुखसियरकालीन दिल्ली कलम का प्रभाव है। यह चित्र राजा मानसिंह (१७०६-१७४८ ई०) के मध्य के हैं और सम्भवतः मुसव्विर (चित्रकार) भवानीदास के बनाये हुए हैं। दरबार के लेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि राजा ने १७२२ ई० में अपने दरबारियों के मुखाकृति चित्र बनवाये। दरबार-संग्रह के एक लघुचित्र में राजसिंह को जंगली भैंसे का आखेट करते हुए दिखाया गया है। इस चित्र की शैली अट्ठारहवीं शताब्दी की राजस्थानी या मेवाड़ी शैली से मिलती-जुलती है। इस समय तक मुखाकृति-चित्र या आखेट-चित्र ही मिलते हैं, परन्तु शीघ्र ही सावन्त सिंह के समय से ही नवीन शक्तिशाली कला-शैली का किशनगढ़ में विकास हुआ।

सावंतसिंह के समय के चित्रों में दरबार, शबीह, आखेट आदि प्रतिदिन के विषयों पर आधारित चित्र भी दिखाई पड़ने लगते हैं, परन्तु कृष्ण के चित्रों की अधिकता है। इस समय 'बिहारीचन्द्रिका' के आधार पर अनेक चित्र बनाये गए। नागरीदास के पिता के दरबार में सूर्यध्वज निहालचन्द नामक एक कायस्थ चित्रकार कार्य कर रहा था। नागरीदास ने इस चित्रकार को अपनी चित्रशाला में नियुक्त कर लिया और उसने इस चित्रकार की सुकोमल, भावपूर्ण तूलिका से राधा और कृष्ण के मार्मिक प्रेम की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति कराई। निहालचंद की तूलिका ने आकार और रंगों के माध्यम से एक नवीन चित्रविधान और स्त्री सौन्दर्य की कल्पना प्रस्तुत की जिसकी प्रेरणा का स्रोत बणीठणी का सजीव रूप था।

किशनगढ़ के चित्रकार

निहालचंद–निहालचंद चित्रकार का दादा सूर्यध्वज मूलराज कायस्थ दिल्ली के दरबार से किशनगढ़ आया और राजा मानसिंह (१६५८-१७०६ ई०) के दरबार में दीवान (सचिव) के रूप में किशनगढ़ दरबार में सम्मानित हुआ, ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि निहालचंद ने सह-सचिव पद ग्रहण न करके चित्रकारी का व्यवसाय क्यों अपनाया? निहालचंद किशनगढ़ का विख्यात चित्रकार था उसके चित्र इतने सुंदर हैं कि बाद के कुछ भद्दे चित्र जो दरबार संग्रह में हैं, उसके नाम से जोड़ दिये गए हैं। नागरीदास के पश्चात् सरदारसिंह ने भी निहालचंद को अपने दरबार में सम्मान दिया।

निहालचंद को सरदारसिंह के सभासदों के साथ एक चाँदनी रात की संगीत गोष्ठी के चित्र या 'चाँदनी रात के गवैये' नामक चित्र में चित्रित किया गया है। इस चित्र में निहालचंद की आयु लगभग ५० वर्ष है। इस चित्र में निहालचंद को राजा सरदारसिंह के सम्मुख प्रथम स्थान दिया गया है। इस चित्र में प्रत्येक व्यक्ति की आकृति का नाम भी अंकित है। यह चित्र अमरचंद नामक चित्रकार का बनाया हुआ है और इस चित्र का

रचनाकाल १७६० ई० से १७६६ ईसवी के मध्य है। इस प्रकार निहालचंद का जन्म अनुमानतः १७०८ ई० के लगभग हुआ होगा। निहालचंद ने सर्वोत्तम चित्राकृतियाँ नागरीदास के सम्पर्क में आने पर १७३५-१७५७ ई० के मध्य या तनिक बाद में बनायी होंगी। सम्भवतः निहालचंद और नागरीदास में घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध था और नागरीदास ने ही निहालचंद को नील वर्ण के देवता कृष्ण और गौर वर्ण की राधा के चित्रण का संकेत दिया होगा जो प्रत्येक वैष्णव के लिए मोक्ष का साधन था। परन्तु एक विचित्र बात यह है कि दोनों ही कृष्ण के प्रचलित चित्र विषयों से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने 'बणीठणी' के रूप से राधा के आदर्श रूप की कल्पना की। इस प्रकार एक नवीन नारी रूप का अंकन प्रारम्भ हुआ, जो उन्नीसवीं शताब्दी की कला में परम्परागत रूप से चलता रहा। चित्रकार ने इस परिवर्तन के साथ नवीन रंग-योजना, संयोजन और नाटकीयता का समावेश करके चित्र को अधिक प्रभावशाली बनाया। ब्रजभाषा काव्य (साहित्य) का इस शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा।

चित्रकार निहालचंद के कुछ चित्रों पर फारसी भाषा के लेख में अमल निहालचंद लिखा है जिसका अर्थ है निहालचंद की कृति। शायद यह लेख पुस्तकालय के अध्यक्ष ने लिखा है, परन्तु निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुछ चित्रों के हाशियों पर फारसी सुलिपि में निहालचंद लिखा है तो कुछ चित्रों पर हिन्दी में 'सूर्यध्वज निहालचंद' लिखा है।

सूर्यध्वज निहालचंद द्वारा चित्रित १७३७ ईसवी का 'भागवतपुराण' प्राप्त है, परन्तु इसके चित्रों की शैली में अवनति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते हैं। कहा जाता है कि सूर्यध्वज मूलराज के वंश में कई सदस्यों ने चित्रकारी का व्यवसाय आरम्भ कर दिया। निहालचंद ने चित्रकला का विधिवत रूप से मुगल दरबार में अभ्यास किया था और उसके प्रारम्भिक चित्रों की शैली भी मुगल थी। निहालचंद के पिता का नाम भीखचंद था। भीखचंद के पिता का नाम दरगामहल था, वे दोनों भी चित्रकार थे। ऐसा कहा जाता है कि इसी वंश में डूंगरमल का पुत्र भी चित्रकार था। निहालचंद के दो अन्य वंशजों ने भी आगे चलकर चित्रकला का व्यवसाय अपनाया। इन वंशजों का नाम 'सीताराम' और 'बदनसिंह' था।

सीताराम—सीताराम एक अच्छा चित्रकार था और उसकी कुछ कृतियाँ दरबार-संग्रह में सुरक्षित हैं। ऐसा कहा जाता है कि निहालचंद-वंश की सन्तति अभी भी किशनगढ़ में निवास कर रही है। किशनगढ़ में निहालचंद के अतिरिक्त और भी कई परिवार थे जो चित्रकारी का व्यवसाय करते थे। दरबार-संग्रह में नामांकित चित्रों से बहुत से कलाकारों के नाम प्राप्त हैं जो भिन्न-भिन्न राजाओं के समय के हैं।

अमरचंद—इन चित्रकारों में अधिक विख्यात चित्रकार अमरचंद था, जो निहालचंद का समसामयिक था। उसका बनाया एक चित्र 'चाँदनी रात के गवैये' जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, दरबार-संग्रह में प्राप्त था। इस चित्र का रचनाकाल अनुमानतः १७६० ई० से १७६६ के मध्य है। अमरचंद की शैली मुगल है। अमरचंद का पुत्र मेघराज भी प्रसिद्ध चित्रकार था।

भवानीदास—भवानीदास नामक चित्रकार राजा राजसिंह ([illegible] ई०) [illegible] में था और कहा जाता है कि उसने दरबारियों के अनेक व्यक्ति चित्र बनाये।

इसी समय में एक अन्य चित्रकार कल्यानदास का नाम भी प्राप्त होता है। अमरू तथा सूरजमल नामक चित्रकारों ने सावंतसिंह की चित्रशाला में कार्य किया। नानगराम (१७७१ ईसवी) चित्रकार ने बहादुर सिंह के समय में चित्र बनाये। बाद में सूरजमल, रामनाथ, जोशी सवाईराम तथा लाड़लीदास आदि चित्रकारों के नाम प्राप्त होते हैं। लाड़लीदास ने कल्यानसिंह (१७८८–१८३८ ई०) के राज्यकाल में चित्र बनाये। अमरचंद के विषय में यह कहा जाता है कि उसने दिल्ली दरबार में चित्रकला की शिक्षा ग्रहण की थी अतः उसकी शैली मुगल थी। किशनगढ़ की चित्रकला पर निहालचंद की शैली की गहरी छाप है परन्तु अमरचंद की कृतियाँ मुगल शैली की हैं।

किशनगढ़ में १८२० ई० के बाद तक सुंदर चित्र बनते रहे जिनमें 'गीत गोविंद' पर आधारित कृतियाँ विशेष हैं परन्तु 'गीत-गोविंद' के चित्रों में स्त्री आकृतियाँ कुछ भिन्न शैली में बनायी गई हैं, फिर भी सुंदर और आकर्षक हैं, यद्यपि चित्रों में कोमलता कम है। राजा पृथ्वीसिंह (१८४०–१८८० ई०) के समय में उत्तम चित्रकार कार्य कर रहे थे जो निहालचंद के स्त्री आकारों को परम्परागत रूप से चलाते रहे, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में इनकी कृतियों में कोमलता के स्थान पर कठोरता आ गई और खुलाई में काली स्याही का प्रयोग होने लगता है। बहादुर सिंह ने १७५६ ई० के लगभग कुशल चित्रकार नियुक्त किए और उसने अपनी राजधानी में भी चित्रकला को प्रोत्साहन दिया। इस समय विशेष रूप से 'कल्यानराय' के चित्र बनाये गए। इस समय का एक चित्र 'कल्यानराय की पूजा' दरबार संग्रह, किशनगढ़ में प्राप्त है।

किशनगढ़ शैली के चित्रों का विषय—किशनगढ़ शैली का विशेष विकास राजा नागरीदास के काल में और उसके पश्चात् हुआ। यद्यपि इस शैली का विकास विशेष रूप से राजदरबार में हुआ फिर भी इस शैली के चित्रों में विषयों की विविधता और तत्कालीन लोकभावनाएँ हैं। इस शैली के आरम्भिक चित्रों के विषय आखेट और दरबार के दृश्य हैं जिनमें राजाओं और युवराजों का जीवन है। इस समय में व्यक्ति चित्रों (छविचित्रों) को प्रमुखता मिली। 'युवराज राजसिंह घोड़े पर सवार काले मृग का शिकार करते हुए' (दरबार संग्रह) किशनगढ़ शैली का आरम्भिक चित्र है। राजा साहसमल का चित्र भी इसी प्रकार का है, उसको अपने शिकरा-बाजों के साथ खड़ा बनाया गया है। किशनगढ़ का चित्रकार आरम्भ में आखेट दृश्य, दरबार और व्यक्ति चित्रों तक सीमित रहा। नागरीदास के पश्चात् राधा और कृष्ण ही चित्रकार के प्रिय चित्रण विषय होने लगे। किशनगढ़ में 'गीतगोविंद', 'भागवत पुराण' तथा 'बिहारीचन्द्रिका' पर आधारित अत्यधिक चित्रों की रचना की गई है। कृष्ण के अतिरिक्त शिव के चित्र भी बनाये गए और चित्रकार ने अन्तःपुर, रंगमहल, स्नानागार तथा रानियों की केलि-क्रीड़ा आदि विषय के अनेक चित्र

बनाये। नायिका-भेद पर आधारित चित्रों को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। नागरीदास के समय में राधा के रूप में बणीठणी को चित्रित किया गया। अन्तःपुर क्रीड़ा के दृश्य अनेक चित्र उदाहरणों में प्राप्त होते हैं और 'चाँदनी रात में तालाब' तथा 'कुन्ड की पीठिका' इस प्रकार के सुंदर चित्र उदाहरण हैं। इन चित्रों में रनिवासों की झाँकी स्पष्ट है। संगीत तथा नृत्य के चित्र भी चित्रकार के प्रिय विषय थे। इस प्रकार के उदाहरण में 'चाँदनी रात की संगीत गोष्ठी' दरबार संग्रह का एक सुंदर चित्र है। इस चित्र में चाँदनी रात में राजा सरदारसिंह अपने मुसाहिबों के साथ महल के प्रांगण में बैठा है, पीछे पृष्ठभूमि में चाँदनी से स्निग्ध श्वेत महल के छज्जों पर ख्वाजा लोग बैठे हैं और नीचे चबूतरे पर गोष्ठी हो रही है। गायक राजा के सामने बैठे हैं तथा अन्य सभासदों ने यथास्थान आसन ग्रहण किया है। चबूतरे के दोनों ओर हरियाली है जिसमें केला सुंदरता से बनाया गया है और चित्र में अंकित आकृतियों का नाम भी लिखा है।

प्रेमी और प्रेमिकाओं के चित्र किशनगढ़ में अपने ही ढंग से बनाये गए हैं। प्रायः नायिका-भेद पर आधारित चित्रों में नायक तथा नायिकाओं को सुंदर नौकाओं पर जलविहार करते दिखाया गया है। इस प्रकार के चित्र उदाहरणों में 'लालबजरा' तथा 'प्रेम की क्रीड़ा' चित्र सुंदर हैं। इस प्रकार के नौकाविहार सम्बन्धी चित्र राजस्थान में अन्यत्र प्राप्त नहीं होते हैं। चित्रकार ने प्रेमी और प्रेमिकाओं की प्रेम क्रीड़ाओं में विशेष रुचि ली है और उनके मिलन-स्थलों के लिए कुंजों तथा लतिकाओं के झुरमुटों या सघन वृक्षों से आच्छादित पीठिकाओं और भवनों का चयन किया है। रात्रि दृश्य भी अपनी-अपनी विशेषता लिये बनाये गए हैं। इस प्रकार के रात्रि दृश्यों में 'दीपावली और दीप' अत्यन्त सुंदर उदाहरण हैं। चित्र में आलेखन की अपनी विशेषता है तथा रंग की योजना और विषय की अभिव्यक्ति में भी नवीनता है। यह चित्र 'किशनगढ़ पेंटिंग'—ललित कला प्रकाशन में लेखक श्री एरिक डिक्सन ने प्रकाशित किए हैं)

विशेष रूप से किशनगढ़ के चित्रकार ने कृष्णलीला के चित्र बनाये हैं। ये चित्र ब्रजभाषा के हिन्दी साहित्य पर आधारित हैं परन्तु इनमें राधा और कृष्ण का अनोखा नवीन रूप है। इस प्रकार के चित्रों में 'साँझीलीला', 'कृष्ण राधा का दुपट्टा पकड़ते' तथा 'कृष्ण गोपियों के साथ नृत्य करते हुए' आदि सुंदर चित्र उदाहरण हैं। भागवत के आधार पर भी अनेक सुंदर चित्र जैसे 'रुकमिणीमंगल' आदि बनाये गए।

कृष्ण और राधा को तत्कालीन प्रेमी और प्रेमिकाओं का रूप देने की चेष्टा की गई है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि नागरीदास ने बणीठणी के प्रति, कृष्ण और राधा के रूप में, अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की, इसी कारण नवीन कलेवर और नवीन प्रेम-क्रीड़ाओं की कल्पना चित्र का आधार बनी। किशनगढ़ शैली के चित्रों में नवीनता है और ब्रजभाषा लोक साहित्य की कल्पना है। इन चित्रों में सजीवता तथा सुंदरता है जिससे भावाभिव्यक्ति और प्रबल हो गई है।

किशनगढ़ शैली की विशेषताएँ

रंगविधान—किशनगढ़ शैली के चित्रों में चटक रंग और आकारों की मौलिक उद्भावना है। चित्रों में अधिकांश अमिश्रित रंगों का प्रयोग है। प्रायः पीले, और लाल रंग का प्रयोग अधिक किया गया है, परन्तु नीले रंग का प्रयोग अत्यधिक शान्तिपूर्ण और सुखद है। आवश्यकता के अनुसार रंगों में सफेद रंग के मिश्रण के द्वारा विभिन्न प्रकार के कोमल रंग बनाये गए हैं। इन रंगों में से हल्के गुलाबी रंग का प्रयोग शरीर में किया गया है। पीला (प्योड़ी), लाल (सिंदूर तथा संगरफ), हरा (जंगाल), नीला (नील), काला (काजल), सफेद (कासगार) तथा सोने के रंगों का प्रयोग किया गया है।

मानव आकृतियाँ—इस शैली की मानव आकृतियाँ भी राजस्थान के अन्य कला केन्द्रों से भिन्न हैं। विशेष रूप से स्त्री आकृतियाँ बहुत कोमलांगी और लतिका के समान लचकदार, पतली, लम्बी और छरहरे शरीर वाली बनायी गई हैं। किशनगढ़ शैली के चित्रों में पशु-पक्षी मेवाड़ शैली के समान ही बनाये गए हैं।

पहनावा तथा रूप—किशनगढ़ शैली के अधिकांश चित्रों में स्त्रियों का पहनावा, लहंगा, चोली तथा पारदर्शी आँचल है। गले, माथे, हाथों तथा कमर में आभूषण बनाये गए हैं, परन्तु सबसे अधिक महत्त्व का आभूषण बेसरि तथा (नाक का आभूषण) है जो अनोखे ढंग का है। कभी-कभी स्त्रियों को साड़ी पहने भी बनाया गया है। उदाहरणार्थ 'कवि युवराज और बणीठणी' नामक चित्र में 'बणीठणी' को साड़ी पहने अंकित किया गया है। पुरुषों का पहनावा लम्बा जामा तथा पायजामा समसामयिक पहनावे पर आधारित है। पुरुषों के पहनावे में कभी-कभी धोती का भी प्रयोग है और जामे के साथ कमर में पटका और सिर पर पगड़ी भी बनायी गई है। कृष्ण को पीताम्बर पहने चित्रांकित किया गया है। स्त्रियों के वस्त्रों में विविध सुंदर रंगों का प्रयोग है। परदों, फर्श के कालीनों तथा कपड़ों में सुंदर आलेखन बनाये गए हैं। कपड़ों तथा शरीर में गोलाई लाने के लिए छाया का प्रयोग किया गया है। चित्र की खुलाई शरीर से मिलने वाले भूरापन लिये किसी लाल रंग से की गई है। लम्बे बाल तथा कर्ण स्पर्शी नेत्र (काजलयुक्त) काले रंग से बनाये गए हैं। कपड़ों में सिकनों तथा वायु के स्पन्दन की भावना है।

रेखा—किशनगढ़ शैली के चित्रों की रेखाएँ कोमल, बारीक (महीन) और भावपूर्ण हैं। रेखाओं में प्रवाह तथा गति है। भौंह तथा बालों को बारीक-बारीक रेखाओं के द्वारा बनाया गया है। बाद के चित्रों में काली रेखाओं का प्रयोग किया गया है।

रात्रि प्रभाव—रात्रि के दृश्यों में चित्रकार ने गहरी पृष्ठभू[illegible]न किया है और दीपकों का झिलमिल प्रकाश पीले रंग के द्वारा बहुत सुंदरता से बनाया है। साधारणतया ऐसे दृश्यों में काले मिश्रित नीले रंग से आकाश बनाया गया है।

नौका-विहार—किशनगढ़ शैली के चित्रों में नौका-विहार तथा कुंजों से आच्छादित पहल बहुत सुंदरता से बनाये गए हैं। सम्भवतः नौकाओं का प्रयोग किशनगढ़ नगर के झील के तट पर आवासित होने के कारण किया गया है।

प्रकृति—चित्रकार ने प्रकृति को भावुकता से देखा है और आलंकारिक योजना को अपनाया है। वृक्षों के पत्तों को सुंदरता से बनाया गया है। प्रायः आम, जामुन, केला आदि वृक्षों का प्रयोग किया गया है और पानी के रंग में चाँदी का प्रयोग किया गया है।

नारी सौन्दर्य—किशनगढ़ शैली की सबसे प्रमुख विशेषता है 'नारी सौन्दर्य'। स्त्रियों के चेहरे पतले और कोमल बनाये गए हैं और मेवाड़ शैली जैसा भारीपन नहीं है। चिबुक के नीचे गरदन तक निकला हुआ बोझिल भाग न बनाकर सिकुड़ा हुआ और भीतर धँसा हुआ भाग बनाया गया है जिससे रूप और सुंदरता की वृद्धि हुई है। नेत्र कमल या खंजन आकार के बनाये गए हैं और नेत्रों की काली रेखाएँ कान की ओर बढ़ती बनायी गई हैं। अधर बिम्बाफल के समान लाल हैं और अधरों के किनारे ऊपर की ओर चढ़े हुए बनाये गए हैं, जो इस शैली की अपनी विशेषता है। निष्कर्षतः किशनगढ़ शैली की नारी में स्थानीय नारी सौन्दर्य की छवि है।

पुष्टि मार्ग—इस शैली के चित्रों में पुष्टि मार्ग का अनुसरण किया गया है। चित्रकार ने भगवान के सौन्दर्य की भक्ति में विस्मृत होकर अपनी आत्मा और परमात्मा का प्रतीक क्रमशः राधा और कृष्ण को माना है। इस शैली के चित्र जीते-जागते हैं और उनमें आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति है।

जयपुर की चित्रकला
(जयपुर शैली)

जयपुर का ऐतिहासिक महत्त्व—जयपुर राज्य राजस्थान के प्रमुख राज्यों में से एक था। यह राज्य अपने भव्य भवनों और शक्तिशाली नरेशों के कारण भी अधिक प्रभावशाली बना रहा। परन्तु जयपुर की चित्रकला का विकास तनिक बाद में हुआ प्रतीत होता है और अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जयपुर में बनायी गई उत्तम कृतियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। जयपुर राज्य का राजस्थानी राज्यों में सबसे पहले मुगलों से सम्बन्ध स्थापित हुआ और जयपुर नरेश मुगल दरबार में सम्मानित हुए।

जयपुर के कछवाहा राजवंश की प्राचीन राजधानी आमेर (अम्बर या आम्बेर) थी और सर्वप्रथम आमेर के युवराज बिहारीमल को मुगल दरबार में सम्राट हुमायूँ ने ५००० मनसबदारी के पद पर सम्मानित किया। उनके पुत्र राजा भगवानदास ने अकबर से मित्रता की और उन्होंने १५६२ ईसवी में अपनी ज्येष्ठ पुत्री राजकुमारी जोधाबाई का विवाह सम्राट अकबर से किया। यह प्रथम राजपूत राजकुमारी थी जिसने मुगल अन्तःपुर में प्रवेश किया। इस राजपूत राजकुमारी ने सम्राट जहाँगीर या सलीम को जन्म दिया। राजा बिहारीमल के पुत्र राजा भगवानदास और भतीजे राजा मानसिंह ने मुगल सेना में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण किए।

(67)

जयपुर नरेशों का कला-प्रेम—आमेर के राजा मानसिंह तथा अन्य राजाओं का कला-प्रेम प्रमाणित है। इन राजाओं ने आमेर के उद्यानों में छतरियों पर चित्रकारी कराई जिनके चिह्न अभी भी प्राप्त है। इन चित्रों का समय सोलहवीं शताब्दी का अंतिम भाग माना जाता है। इसके पश्चात मिर्ज़ा राजा जयसिंह (१६२५-१६६७ ई०) मुगल सेना का प्रमुख सेनापति था और उसकी अध्यक्षता में २१,००० घुड़सवार राजपूत सेना और २२ बड़े सरदार थे। मिर्ज़ा राजा जयसिंह की १२ जुलाई १६६७ ईस्वी में बुरहानपुर में मृत्यु हो गई और सवाई जयसिंह १६९३ ईसवी में सिंहासन पर बैठा। सवाई जयसिंह प्रतिभा सम्पन्न शासक था। उसने शासन व्यवस्था, विद्वता तथा भवनकला में अनोखी सूझबूझ का परिचय दिया। उसने नवीन राजधानी जयपुर का निर्माण कराया और इस नगर को एक निश्चित योजना प्रदान की। उसने ज्योतिष-शास्त्र में भी रुचि प्रदर्शित की और उसके समय में आश्चर्य नहीं कि चित्रकला को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ हो। सवाई राजा ईसरी सिंह (१७४४-५१ ई०), सवाई राजा प्रताप सिंह द्वितीय (१७७८-१८०३ ई०), सवाई राजा जगत सिंह द्वितीय (१८०३-१८ ई०), सवाई राजा जय सिंह तृतीय (१८१८-३५ ई०) तथा सवाई राजा राम सिंह (१८३५-१८८० ई०) के शासनकाल में कछवाह कलाओं तथा जयपुर चित्रशैली का मौलिक विकास हुआ।

जयपुर के मुखाकृति चित्र—जयपुर में मुखाकृति चित्रण पर्याप्त समय पूर्व से अपने निजी ढंग पर चल रहा था परन्तु कछवाह चित्रकला के उदाहरण स्वरूप दो भव्य मुखाकृति चित्र ही प्राप्त है जिनमें से एक चित्र 'सवाई राजा जयसिंह द्वितीय' का है तथा दूसरा 'महाराणा प्रताप सिंह जी' (१७७८-१८०३ ई०) का है। ये चित्र बड़े आकार के है और इनमें आकृति का पार्श्व भाग दिखाया गया है। इनकी शैली मुगल मुखाकृति चित्रों से सर्वथा भिन्न है। सम्भवतः ये दोनों चित्र अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग के है यद्यपि सवाई राजा का चित्र कुछ पहले का ज्ञात पड़ता है। इन चित्रों में सादृश्य के साथ ही आलंकारिकता है और आकृतियाँ राजस्थानी शैली की परम्परा पर बनायी गई है। गर्दन में मोतियों की मालाएँ अंकित की गई है जो वक्षस्थल पर सुरसरि के समान सुशोभित हो रही हैं। फूलदार रेशमी कपड़े के मोड़ विवरण सहित सतर्कता के साथ बनाये गए हैं। इन दोनों चित्रों की आकृतियों में चेहरे एकचश्म है परन्तु चित्रों की रेखाओं में सफाई, कोमलता और गोलाई है। सीमा रेखाओं के द्वारा चेहरे की कोमलता का प्रभाव उत्पन्न किया गया है। जयसिंह के चेहरे से उसकी बुद्धिमत्ता और शक्ति का आभास होता है। इस चित्र में आकृति के अंगों तथा अंग-भंगिमाओं का विधान आलंकारिक और परम्परागत है और उंगलियाँ पतली-पतली बनायी गई हैं। आलेखन के द्वारा चित्र में साज-सामान सुंदरता से भर दिया गया है।

जयपुर के चित्र—महाराजा प्रताप सिंह जिस समय गद्दी पर बैठा तो वह अल्पवयस्क था और उसकी माता ने शासन अपने हाथों में ले लिया। रानी ने राजा

खुशालीराम को अपना सलाहकार बनाया। इस समय अलवर जयपुर राज्य से अलग हो गया। राजा प्रताप सिंह का चित्र बड़ा और सुंदर है परन्तु उनके चेहरे से कोमलता का भाव मिलता है, दृढ़ता का नहीं। रेखांकन के द्वारा चेहरा बनाया गया है और छाया का बहुत कम प्रयोग है। राजस्थानी शैली की हिन्दू चित्रकला के मुखाकृति चित्रों में इन उदाहरणों को सर्वोत्तम समझना चाहिए क्योंकि इन चित्रों में प्राचीन भित्तिचित्रों की परम्परा या अपभ्रंश कला का ही विकसित रूप है। जयपुर राज्य ब्रजप्रदेश की सीमा पर ही था। अतः वैष्णव सम्प्रदाय का जयपुर पर गहरा प्रभाव पड़ा, इस कारण यहाँ पुष्टिमार्ग से सम्बन्धित अनेक सुंदर चित्रों का निर्माण किया गया जो सर्वथा भिन्न प्रकार के हैं। सम्भवतः ये चित्र महाराजा प्रताप सिंह के समय के हैं परन्तु ये चित्र जयपुर शैली की प्रतिनिधि कृतियाँ माने जा सकते हैं। एक चित्र में श्री कृष्ण को गोवर्द्धन धारण किये हुए अंकित किया गया है। इस चित्र में कृष्ण की मुखमुद्रा एकचश्म है और उनका छरहरा शरीर सम्मुख स्थिति में है। उनके शरीर से कोमलता का आभास होता है परन्तु अंग-भंगिमा में पर्याप्त दृढ़ता है। कृष्ण के चारों ओर गायें, गोपियाँ तथा ग्वाल-बाल है जो गोवर्द्धन पर्वत के नीचे खड़े हैं और गोवर्द्धन पर्वत को भगवान कृष्ण ने उंगली पर उठा रखा है। पर्वत छत्र का कार्य कर रहा है, ऊपर आकाश में बादलों के मध्य स्वर्ग के देवता दर्शाये गए हैं। आकाश में वर्षा का भीषण प्रभाव अंकित किया गया है। चित्र में यमुना का किनारा यथार्थ बनाया गया है—आकाश में ऐरावत पर सवार इन्द्र स्वयं श्री कृष्ण की पूजा करने जा रहे हैं। इस चित्र में चित्रकार ने बहुत सुंदर संयोजन विधान किया है। चित्र की आकृतियों में गति, लय और भाव है। इस चित्र में गरुड़, ऐरावत तथा गायें बहुत सुंदरता से बनायी गई हैं।

दूसरा चित्र 'रासमंडल' का है जिसके मध्य में मानव-आत्मा और परमात्मा का प्रतीक भगवान कृष्ण और राधिका का युगल है। इस युगल के चारों ओर गोपियाँ कई मंडलाकारों में नृत्य कर रही हैं। इस चित्र की आकृतियों के चेहरे दिव्य युगल की ओर हैं, पृष्ठभूमि की गोपिकाओं का केवल पार्श्व भाग ही दिखाई पड़ रहा है। इस चित्र को आकाशीय-दृष्टि (aerial view) से बनाया गया है। चित्र में आलेखन-योजना और अलंकरण को प्रधानता दी गई है। दिव्य-युगल में गति है तथा मुद्राएँ लावण्यपूर्ण हैं। आकाश में देवगण पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं। इन दोनों ही चित्रों में काले रंग की प्रधानता है और रेखाएँ भी काले रंग से बनायी गई हैं। एक अन्य बड़े आकार के चित्र में गोपियों को चित्रित किया गया है। इस चित्र की मूल प्रति जयपुर पोथीखाने में सुरक्षित है।

जयपुर शैली के दो अन्य बड़े आकार के चित्र प्राप्त हैं जो छः फुट लम्बे और तीन फुट चौड़े हैं। ये सुंदर चित्र तिब्बत के थानकानामी झंडों के सामने पट पर बने हैं इन चित्रों में प्रथम चित्र 'ग्रीष्म' और द्वितीय 'शरद' है। प्रथम चित्र में एक युवती

राजपूत और मुगल मिश्रित परिधान में यौवन के प्रतीक फलों से लदे एक आम्र वृक्ष के नीचे खड़ी है। स्त्री का बायाँ हाथ कमर पर रखा है और दाहिने हाथ से ऊपर की ओर आम्र वृक्ष की डाली पकड़े है तथा नीचे खड़े काले हिरन को देख रही है। हिरन युवती की ओर मुँह उठाए पूँछ हिला रहा है। 'शरद' वाले चित्र में हिरन के स्थान पर शरद ऋतु का प्रतीक सारस है और आम्र वृक्ष के स्थान पर चम्पक वृक्ष है और युवती के दाहिने हाथ पर सारिका बैठी बनायी गई है जिससे वह वार्तालाप कर रही है। दोनों चित्रों की पृष्ठभूमि में दूर तक आमेर दुर्ग का दृश्य अंकित किया गया है। अग्रभूमि में आलंकारिक ढंग से बनाये गए हैं, जिनमें पुष्पित सूर्यमुखी के पौधों को अंकित किया गया है।

जयपुरी सचित्र विज्ञप्ति लेख—जैन धर्म के कारण सचित्र विज्ञप्ति लेखों का भी राजस्थान की कला में पर्याप्त प्रचलन हो रहा था। चतुर्मास हेतु जैन धर्म गुरुओं को आमंत्रित करने के लिए स्थानीय जैन संघ की ओर से जो स्वागतार्थ पत्र भेजा जाता था उसे विज्ञप्ति लेख कहते हैं। ऐसा एक विज्ञप्ति लेख जो बीसवीं शताब्दी का है और श्री सुरपति सिंह जी दुगड़ के संग्रह में है (अनुमानतः इस लेख का समय १९३० ईसवी है), श्री रत्न विजय जी को निमंत्रित करने के लिए भेजा गया था। इसमें अंकित लेख से प्रतीत होता है कि इस लेख को जयपुर के दधीच मानूलाल ने तैयार किया था परन्तु चित्रकार का नाम लेख में प्राप्त नहीं होता। अनुमानतः यह चित्रपट्टी बंगाल से, जयपुर में तैयार करायी गई और ग्वालियर में जैन मुनि के पास भेजी गई थी। यह विज्ञप्ति लेख १९ फुट लम्बी और ११.५ इंच चौड़ी कपड़े की पट्टी पर तैयार किया गया है। इस लम्बी पट्टी में अनेक चित्र हैं। सर्वप्रथम मंगलकलश तथा छत्र का चित्र है जिसके नीचे दो चमरधारी पुरुष और दो मयूर पिच्छिकाधारणी स्त्रियाँ खड़ी हैं। दूसरे तथा तीसरे चित्र में अष्टमंगलीक तथा चतुर्दश महास्वपनो, सूर्य और श्री त्रिशला माता के चित्र हैं—सूर्य के चित्र में व्याघ्र चित्रित किया गया है। चौथे चित्र में 'जिनमाता तथा सिद्धार्थ राजा का महल' बनाया गया है, साथ ही एक जिनालय का चित्र है। पाँचवें चित्र में सात श्रावक खड़े हुए प्रभु दर्शन कर रहे हैं तथा अन्य नमस्कार वंदना कर रहे हैं। छठे चित्र में पाँच सजे हुए हाथी हैं जिन पर पताकाएँ, अंबारी, झूला, हौदा, जनानी अंबारी तथा व्याघ्रमुखदंड हैं। सभी हाथियों पर महावत बैठे हैं परन्तु एक हाथी पर दो अन्य व्यक्ति बैठे हैं जिन पर पंचवर्णी पताका फहरा रही है। इसी चित्र में पहरेदार, अश्वारोही दल, निशान तथा पताकाधारी, बन्दूकधारी सांडनी-सवार, फौजी सैनिक तथा बैंड आदि हैं। सातवें चित्र में जुजुर्वे तोपें रखी हुई हैं, तदुपरान्त रथ, ऊँट, घुड़सवार, पालकी, रथ आदि हैं। आठवें चित्र में दो नर्तकियाँ तथा वाद्ययंत्रधारी एक वादिका के अन्तर्गत महल के प्रांगण में खड़े हैं और मुनिराज के स्वागतार्थ श्रावक-दल आगे बढ़ रहा है। नवें चित्र में एक महल की वाटिका में श्री रत्नविजय तख्त पर विराजमान हैं सामने

श्रावक तथा श्राविकाएँ सुसज्जित वस्त्रों में बैठी हैं। इसी चित्र में गवैये आदि भी बनाये गए हैं। अन्तिम चित्र में जयपुर की झाँकी दिखायी गई है जिसमें जयपुर नगर की प्राचीर (परकोटा शहर) का भाग दिखाया गया है, नगर के चार दरवाजे मकान, वृक्ष, नरनारी, घोड़े, हाथी, इक्के आदि को चित्रित किया गया है। हवामहल, जौहरी-बाजार, जलमहल आदि का सादृश्यपूर्ण अंकन है। चित्र के एक भाग में तम्बू-डेरा आदि भी दृष्टिगोचर होते हैं, साथ ही अनेक मंदिर भी दिखाई पड़ रहे हैं। इन चित्रों में जयपुरी (कछवाह) शैली का अच्छा परिचय मिल जाता है।[१]

जयपुर के कुशल चित्रकार गणेश के बनाए अनेक सुंदर चित्र कलकत्ता के जैन-श्वेताम्बर-पंचायती मंदिर में लगे हैं जो कि सम्वत् १६२५ से १६३५ के मध्य के बने हुए हैं।

जयपुर शैली की विशेषताएँ

विषय—जयपुर शैली के चित्रों में मुखाकृति चित्रों तथा व्यक्ति चित्रों का अपना विशेष स्थान है। जयपुर के राजाओं के बड़े आकार में भी व्यक्ति चित्र बनाये गए। इन चित्रों में राजस्थानी परम्परा बलवती रूप में दिखाई पड़ती है। इन चित्रों के अतिरिक्त शिकार, दरबार आदि के चित्र भी बनाये गए। कृष्ण से सम्बन्धित चित्रों की संख्या अधिक है और श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं, रास तथा बाल क्रीड़ाओं के अनेक चित्र बनाये गए हैं। दूसरी ओर नायिका-भेद पर आधारित विषयों पर भी चित्र बनाये गए। इन चित्रों में परमात्मा का प्रतीक कृष्ण को माना गया है।

विधान—जयपुरी चित्रों का विधान सुंदर और सुकोमल है। योजनाएँ आलंकारिक और संतुलित हैं। यद्यपि यत्र-तत्र जहाँगीर तथा शाहजहाँकालीन मुगल प्रभाव है। रेखाएँ कोमल हैं और प्रवाहपूर्ण डौल लिए बनायी गई हैं। चित्र की सीमा रेखा से ही चित्राकृति में गोलाई लाने का सफल प्रयास दिखायी पड़ता है। काली रेखाओं का प्रयोग चेहरे की सीमा रेखा के किनारे हल्की गोलाई लाने के लिए किया गया है, साथ ही छाया का भी यथोचित प्रयोग किया गया है। अधिकांश चित्रों में एकचश्म चेहरे का प्रयोग किया गया है और मुद्राएँ सुंदर तथा भावपूर्ण हैं। कपड़ों, साज-सामान तथा आभूषणों में सुंदर आलेखन बनाये गए हैं। स्त्रियों का पहनावा कुछ चित्रों में मुगल ढंग का है परन्तु अधिकतर चित्रों में मुगल शैली के भवनों का प्रयोग किया गया है।

जयपुर शैली के चित्रों की खुलाई मुगल चित्रों के समान काले रंग या काली स्याही से की गई है। पशु-पक्षियों का बहुत स्वाभाविक और यथार्थ अंकन किया गया है। पीले, लाल, नीले, सफेद तथा काले रंगों की चित्रों में प्रधानता है।

प्रकृति—वृक्ष, पौधे, लता, पुष्प, समस्त वनस्पति तथा प्राकृतिक वातावरण और आलंकारिकता मेवाड़-शैली के समान है। अधिकांश चित्र बड़े आकार के हैं।

पहाड़ी चित्रकला

(नारी सुषमा)
(१७०० ई० से १९०० ईसवी तक)

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पंजाब और हिमालय की सुरम्य घाटियों से एक परम्परागत और उन्नतशील भारतीय कला-शैली के चित्र उदाहरण प्राप्त हुए, जिनसे कला जगत की विचारधारा और आलंकारिक रुचि पर एक परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा। इन चित्रों के प्राप्त होने से भारतीय कला के प्रति विचारधारा ही बदल गई। इन चित्रों की कला-शैली मुगल शैली से सर्वथा भिन्न और भावनापूर्ण थी और इन कृतियों में पहाड़ी आत्मा का सौन्दर्य, सौकुमार्य, वैभव और यौवन मुखरित हो उठा। यह पहाड़ी चित्र शैलियाँ पहाड़ी क्षेत्रों के ठाकुर राजाओं की ठाकुराइयों में विकसित हुईं।

सर्वप्रथम १९१६ ई० में डॉ० आनन्द कुमारस्वामी ने पहाड़ी चित्रों का दो भागों में वर्गीकरण किया और उन्होंने प्रथम वर्ग के चित्रों को उत्तरी-चित्रमाला तथा द्वितीय वर्ग के चित्रों को दक्षिणी-चित्रमाला के नाम से पुकारा। उत्तरी चित्रमाला से उनका अभिप्राय कांगड़ा स्कूल के चित्रों से था और दक्षिणी चित्रमाला से उनका अर्थ डोगरा जम्मू स्कूल के चित्रों से था। इस वर्गीकरण में उन्होंने बसोहली स्कूल के चित्रों को भी सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार जिन चित्रों को उन्होंने जम्मू-स्कूल का माना वे वास्तव में बसोहली, नूरपुर, गुलेर तथा कुल्लू में प्राप्त हुए थे। उन्होंने जम्मू स्कूल का वर्णन इन शब्दों में किया है–'चित्रों का एक संग्रह या भाग, जो राजस्थानी चित्रों से कुछ भिन्न शैली का था, पंजाब-हिमालय क्षेत्र और विशेष रूप से डोगरा पहाड़ी राज्यों से प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है। इनमें जम्मू सबसे अधिक धनवान एवं शक्तिशाली राज्य था और ये चित्र उदाहरण विशेष रूप से सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भिक भाग के हैं। इनमें से कई चित्र अपनी शैली के अतिरिक्त (जो अमृतसर के चित्र विक्रेताओं को सामान्यता 'तिब्बती' चित्रों के नाम से मालूम हैं) अपनी टाकरी लिपि के लेखों के कारण

पहचाने जा सकते हैं।' श्री अजीत घोष ने नूरपुर तथा बसोहली स्कूल के आरम्भिक चित्र सत्रहवीं शताब्दी के माने हैं जिनका जम्मू स्कूल से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने बसोहली स्कूल की कृतियों को मुगल स्कूल से पूर्व का माना और यह बताया कि बसोहली जम्मू राज्य में था और पंजाब में नहीं। वास्तव में इस प्रकार के चित्र जम्मू में प्राप्त नहीं हुए हैं और जम्मू का महत्त्व केवल इस कारण है कि वह एक शक्तिशाली और सबसे अधिक धनवान राज्य था। उन्नीसवीं शताब्दी में ही जम्मू में एक विकसित चित्रकला शैली (संस्थान) का उदय हुआ। इस समय जम्मू राज्य पहाड़ी राज्यों में सबसे बड़ा और शक्ति सम्पन्न राज्य हो गया था। जम्मू के अधीन बहुत सी छोटी-छोटी ठाकुराइयाँ या रियासतें आ जाने से जम्मू का पहाड़ी राज्यों पर प्रभुत्व जमने लगा था। इसी कारण बहुत से कलाकार कांगड़ा छोड़कर जम्मू राजदरबार में आश्रय पा गए। इन चित्रकारों के वंशजों को जम्मू में अच्छा संरक्षण प्राप्त हुआ और लगभग पचास वर्ष तक उच्चकला संस्थान चलता रहा। जम्मू में अपनी कोई भी चित्रकला शैली पहले से विकसित नहीं थी।

१९३० ईसवी में जब श्री जे०सी० फ्रेंच ने पंजाब की पहाड़ियों का भ्रमण किया तो उनको इसी प्रकार बसोहली शैली के चित्र उदाहरण चम्बा, मण्डी तथा सुकेत नामक नगरों में प्राप्त हुए।' उन्होंने इन चित्रों का विवरण इस प्रकार दिया है—'इस चम्बा संग्रहालय में कई राजाओं के व्यक्ति चित्र हैं जो कांगड़ा स्कूल के नहीं माने जाते हैं, बल्कि स्थानीय कलाकारों ने बनाये हैं। इन चित्रों की शैली बसोहली के चित्रों की शैली के समान है।' इस प्रकार यह अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ बसोहली से सम्बन्धित एक शैली का विकास हुआ या बसोहली में चम्बा कला की शाखा पहुँची। श्री फ्रेंच को इस शैली के चित्र मण्डी, सुकेत तथा कांगड़ा क्षेत्र से प्राप्त हुए थे।

बसोहली शैली के चित्र पंजाब के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। बसोहली शैली के कई चित्र हरिपुरगुलेर के राजा बलदेव सिंह, लम्बाग्राम (Lambagram) के राजा ध्रुवदेवचन्द तथा नादौन के मियाँ देवीचंद के संग्रह में सुरक्षित हैं। इनके अतिरिक्त इस शैली के कुछ चित्र वजीर कर्तारसिंह—वासा वज़ीरान-नूरपुर, राजा रघुवीरसिंह—सांगरी (Shangri)—(कुल्लूघाटी), राजा राजेन्द्रसिंह—अर्की, तथा कुंवर ब्रजमोहनसिंह—नालागढ़ के संग्रह में सुरक्षित हैं। कांगड़ा शैली की परिपक्व अवस्था से पूर्व सम्भवतः यह शैली सम्पूर्ण पंजाब तथा जम्मू की पहाड़ियों में प्रचलित थी और फिर पर्याप्त समय तक दोनों शैलियाँ साथ-साथ विकसित होती रहीं। कालान्तर में कुछ वर्षों तक इन दोनों शैलियों के कलाकारों की विशेष रूप से नूरपुर, चम्बा, मण्डी, गुलेर, तीरासुजानपुर तथा नादौन में होड़ सी लगी रही।

सत्रहवीं शताब्दी में नेपाल में एक मिश्रित राजपूत शैली के चित्र बनाये गए, जिनमें लाल तथा पीले रंगों की प्रधानता थी और यह शैली नेपाल में अठ्ठारहवीं शताब्दी तक चलती रही। नेपाल में चित्रित इस शैली के धार्मिक चित्रों की पत्रियाँ प्राप्त

हुई है। डॉ० मोती चन्द्र ने नेपाल से प्राप्त एक लम्बी चित्रित पत्री (पट्टी) का वर्णन प्रकाशित किया है जिसका समय उन्होंने १७२८ ईसवी माना है। इस पत्री के चित्रों तथा बसोहली स्कूल के चित्रो की रंग-योजना, पुरुषों के वस्त्रों तथा स्त्री रूपों में अत्यधिक समानता है। यद्यपि ये दो राज्य भौगोलिक स्थिति से बहुत दूर हैं और नेपाल के गोरखाओं और बसोहली के राजाओं में कोई सम्बन्ध भी नहीं था। इस कारण इन दोनों स्कूलों के समान विकास और समानता का मूल कारण यह हो सकता है कि इन दोनों कला-शैलियों का उद्गम स्रोत एक ही था।

आर्चर महोदय के अनुसार–सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक पश्चिमी-हिमालय के क्षेत्र में किसी प्रकार की चित्रकला विकसित नहीं हुई थी। १६७८ ई० में राजा कृपालपाल एक छोटी ठाकुराई या रियासत बसोहली का शासक बना और उसके साथ ही एक नवीन कलात्मक जिज्ञासा और कला रुचि जाग्रत हुई। उसके समय में ऐसे चित्र बनाये गए जिनकी तीस वर्ष पूर्व के उदयपुर स्कूल की कृतियों से तुलना की जा सकती है। इस समय में बसोहली में एक भावनापूर्ण शैली का जन्म हुआ। इस नवीन चित्र शैली में सपाट चमकदार, हरे, भूरे, लाल, नीले और नारंगी धरातल तथा जंगलीपन लिए एकचश्म चेहरे, जिनमें बड़ी-बड़ी आँखें थीं, चित्रित किये गए। ये चित्र उदयपुर के १६५०-१६६० ई० के मध्य बने चित्रों से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। परन्तु अभी तक ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं जिनसे कि उदयपुर तथा बसोहली के सम्बन्ध में विषय में निश्चय किया जा सके। यह सम्भव हो सकता है कि उदयपुर के राणा राजसिंह के समय में कुछ उदयपुरी चित्रकारों को बसोहली जाकर बसने को बाध्य किया गया हो। यह विदित ही है कि पंजाब के पहाड़ी राज्यों के ठाकुर राजाओं के पूर्वज प्रायः वैवाहिक सूत्र से राजस्थान के राजपूत वंशों से सम्बन्धित थे। इस कारण यह भी सम्भव हो सकता है कि यदि राजा कृपालपाल ने उदयपुर का भ्रमण किया हो तो उसी अवसर पर उसने उदयपुर में अपनी चित्रशाला के लिए चित्रकारों की नियुक्ति की हो। परन्तु न तो उदयपुर के राजाओं का बसोहली के राजाओं से कोई सम्बन्ध था और न ही राजा कृपालपाल ने उदयपुर का भ्रमण किया। इस कारण प्रारम्भिक मेवाड़ शैली और बसोहली शैली की समानता का जो संतोषजनक कारण हो सकता है वह यह है कि जो कलाकार दिल्ली से उदयपुर तथा बसोहली गये थे मुगल दरबार के थे। परन्तु मेरी (लेखक की) समझ से हिन्दू धर्म की सनातन एकता और तीर्थ स्थानों के प्रति हिन्दू जगत की श्रद्धा और तीर्थ-यात्रा के प्रति रुचि तथा मठों में धार्मिक चित्र पोथियों के वितरण की पद्धति से भी सम्भवतः शैली की यह एकात्मकता दृष्टिगोचर होती है। श्रीनाथद्वारा राजस्थान में एक महान तीर्थकेन्द्र था और यहीं पर असंख्य यात्री तथा धर्म-श्रद्धालु दर्शन हेतु भारत के प्रत्येक भाग से आते थे और प्रसाद स्वरूप सचित्र पोथियाँ या श्रीनाथ जी के चित्र ले जाते थे। इस प्रकार राजस्थान के पवित्र नगरों उदयपुर और श्रीनाथद्वारा की मेवाड़ी शैली तथा उनके चित्र इधर-उधर अवश्य पहुँचे होंगे।

(74)

बसोहली शैली के जन्मस्थान का वर्णन करते हुए डॉ० आनन्द कुमारस्वामी ने १६२६ ईसवी में इस प्रकार लिखा–"यह कहा जा चुका है कि तथाकथित तिब्बती चित्रों (अमृतसर के चित्र विक्रेताओं को जो नाम ज्ञात है, यहाँ पर इन चित्रों को जामवाल (जम्मू) नाम के वर्गीकरण में रखा गया है, जिन पर सामान्यतः टाकरी ढंग के लेख मिलते हैं)' को बसौरी या बसोहली नाम से पुकारना चाहिए और जामूली (जम्मू का) नहीं।" परन्तु जो कुछ भी हो, इन चित्रों में अनोखी और प्राचीन पहाड़ी कला-शैली दिखाई पड़ती है। यह सम्भव हो सकता है कि तारानाथ की तथाकथित कश्मीर शैली (स्कूल) के साथ ही पहाड़ी चित्रकला भी प्राचीन पश्चिम भारतीय कलाशैली से बहुत आरम्भिक काल में ही पृथक हो गई और उसका उदय तथा विकास पाल तथा जैन लघु चित्रशैली के रिक्थ पर हुआ हो। परन्तु इस अवस्था के पश्चात स्पष्ट रूप से मुगल दरबार का प्रभाव आने लगा, इस प्रकार चित्रों में एक मिश्रित मौलिक शैली दिखाई पड़ने लगी।

बसोहली शैली से पूर्व गुजराती चित्रकला का पहाड़ी ठाकुराइयों की कला से कोई सम्बन्ध था या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, यद्यपि गुजराती-शैली की 'चौरा-पंचशिखा' चित्रमाला (१५७० ई०) तथा बसोहली शैली के चित्रों में आकृतियों के बड़े-बड़े नेत्र तथा पारदर्शी आँचल समान रूप में बनाये गए हैं। तारानाथ (१०६८ ई०) ने पश्चिमी भारत शैली, जिसकी स्थापना मेरू (मारवाड़) के श्री रंगधर ने की थी, के विषय में लिखा है कि–'कश्मीर में भी प्राचीन समय में पश्चिमी भारत शैली के अनुयायी थे।' परन्तु ठीक प्रमाण और उदाहरण प्राप्त न होने के कारण पहाड़ी राज्यों में मुगलों से पूर्व किसी भी प्रकार की जैन अपभ्रंश या गुजराती चित्रकला का प्रचलन प्रमाणित नहीं होता। इस प्रकार गुजराती चित्रकला और प्राचीन पहाड़ी चित्रकला का सम्बन्ध स्थापित करना केवल एक बौद्धिक प्रयास मात्र है।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य पंजाब तथा जम्मू की पहाड़ियों में बसोहली शैली जैसी विशेषताओं से युक्त एक लोक-कला प्रचलित रही हो यह सम्भव हो सकता है। श्री गोएट्ज ने ब्रह्मौर (भरमौर स्थानीय भाषा में प्रचलित नाम) स्थित चम्बा के राजाओं के महल के कपाटों पर लकड़ी में उभारकर काटी गई आकृतियों का वर्णन दिया है। ब्रह्मौर का यह महल चम्बा के राजा पृथ्वीसिंह ने १६५०-६० ई० के मध्य बनवाया था। उपरोक्त लकड़ी की किवाड़ों पर काटी गई आकृतियों के लिए श्री रन्धावा ने प्राचीन बसोहली शैली का माना है जो निराधार है। ये आकृतियाँ मुगल-चम्बा शैली की परिचायक हैं और इन आकृतियों में चम्बा के राजा पृथ्वीसिंह तथा मुगल युवराज मुरादबख्श की आकृतियाँ काटी गई हैं (चम्बा संग्रहालय)। राजा पृथ्वीसिंह का राज्यकाल १६४१-१६६४ ई० माना जाता है। उसने अपने राज्यकाल में चम्बा राज्य में कागज़ का प्रयोग आरम्भ कराया और उसके समय में सम्भवतः प्रस्तर तथा काष्ठ उरेहन की कला प्रचलित थी। चम्बा राज्य में भरमौर स्थित लखना देवी के काष्ठ मंदिर (तेरहवीं शताब्दी) के द्वारों तथा चौखटों पर मिथुन के काष्ठ उभारन

बनाये गए थे जो आज भी सुरक्षित हैं। चम्बा के राजा पृथ्वीसिंह का विवाह बसोहली के राजा संग्रामपाल की पुत्री राजकुमारी से हुआ था। इस प्रकार बसोहली की कला चम्बा या चम्बा की कला बसोहली पहुँची होगी। श्री गोएट्ज़ ने लकड़ी पर काटी गई चम्बा महल के कपाटों की इन उभारन आकृतियों का समय १६६४-७० ई० के बीच माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन बसोहली या चम्बा शैली या कोई पहाड़ी शैली या क्षेत्रीय लोकशैलियाँ लोककला के रूप में सम्पूर्ण पंजाब की पहाड़ियों में प्रचलित थीं। यदि क्षेत्र के दृष्टिकोण से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कला एक विशाल क्षेत्र में विकसित हुई जिसके लिए बहुत समय की आवश्यकता थी इस कारण यह चित्रकला प्राचीन लोककला जैसी कला रही होगी जो लखना देवी मंदिर के काष्ठ-उरेहण के कार्य में प्रचलित थी। बसोहली की विकसित कला का जन्म मुगल और पहाड़ी लोककला के सम्मिश्रण और सम्बन्ध से हुआ क्योंकि स्त्रियों का पारदर्शी आँचल और पुरुषों का पहनावा मुगल ढंग का है, जबकि मुखाकृति चित्रण का ढंग स्थानीय शैली का है, जिसका मूल रूप पहाड़ी लोककला या क्षेत्रीय लोककला से विकसित हुआ जान पड़ता है। यद्यपि बसोहली शैली के चित्रों में पुरुष पहनावा जामा तथा पाजामा है परन्तु स्त्रियों के पहनावे में विविधता है और उनको कुर्ता पर चुश्त चोली या पेशवाज़ तथा आँचल (ओढ़नी) पहने चित्रित किया गया है। इस प्रकार पहनावे की विविधता से अनुमान होता है कि बसोहली शैली केवल दिल्ली शैली का आयत रूप नहीं है बल्कि उसमें स्थानीय लोककला का भी पूर्ण संयोग है।

१६८५-१७०७ ई० तक दिल्ली में सम्राट औरंगज़ेब की चित्रकला के प्रति उदासीनता और धार्मिक कट्टरता के कारण चित्रकला तथा अन्य कलाओं का दिल्ली दरबार में तिरस्कार होने लगा और कलाकार आश्रय की खोज में राजस्थानी युवराजों तथा पंजाब और जम्मू की पहाड़ियों के ठाकुर राजाओं की शरण में लगभग १६६० ईसवी तक जा बसे। बसोहली के राजा संग्रामपाल तथा उसके उत्तराधिकारी हिन्दालपाल के छवि चित्र प्राप्त हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ चित्रकार राजा कृपालपाल से पूर्व ही बसोहली में चित्र बना रहे थे। इस आधार पर ही श्री रंधावा ने इन चित्रों को राजा संग्रामपाल के शासनकाल के अंतिम वर्षों अर्थात् १६६१-७३ ई० का माना है। उनके अनुसार इस शैली के चित्र केवल बसोहली में ही नहीं अपितु चम्बा, नूरपुर, नालागढ़, मण्डी तथा जम्मू में भी बनाये गए। परन्तु वास्तव में इन चित्रों का बारीकी से अध्ययन करने की आवश्यकता है क्योंकि चम्बा के चित्र मुगल संविधान पर आधारित हैं और अधिक प्राचीन हैं। यह सम्भव है कि इन स्थानों के चित्रों में शैली का प्रारम्भिक रूप न हो परन्तु यह विचारणीय है कि यदि मुगल दरबार से चित्रकार आये तो उनकी शैली इतनी शीघ्र कैसे बदल गई, इस कारण यह सोचना ठीक है कि पहाड़ी राज्यों में क्षेत्रीय चित्रकलाएँ प्रचलित थीं जिनका इस समय से विकास हुआ अन्यथा इतनी शीघ्र एक शैली [illegible] प्रौढ़ों के उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकती थी।

रेखाचित्र सं० २२ —राजा कृपालपाल
(बसोहली शैली—१६१४ ई०)

पहाड़ी राज्यों की स्थापना सातवीं और आठवीं शताब्दी में राजपूत युवराजों ने अपने बाहुबल से मुसलमानों के आगमन से पूर्व प्रारम्भ की और इन्होंने यहाँ पर छोटे-छोटे ठाकुराई राज्य स्थापित किये। मैदानी क्षेत्र में अफगानों तथा मुगलों का मुसलमान साम्राज्य स्थापित हो गया था, अतः सत्रहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का विकास पहाड़ी राज्यों में हुआ और यहाँ हिन्दू धर्म की सुरक्षा भी हुई। वैष्णव सम्प्रदाय ने बसोहली को भावात्मकता प्रदान की। राजा संग्रामपाल के छोटे से बसोहली राज्य में चम्बा के समान सर्वप्रथम बाहर से आये चित्रकारों को आश्रय प्राप्त हुआ। दिल्ली के निराश्रित चित्रकारों का पहला दल जम्मू और पंजाब के पहाड़ी राज्यों में जाकर बसा। अनुमानतः इन चित्रकारों ने चम्बा तथा बसोहली शैली को जन्म दिया और वैष्णव सम्प्रदाय की अभिव्यक्ति चित्रों के रूप में होने लगी। इस शैली के चित्र पहले बसोहली में और फिर अन्य राज्यों में बनाये गए। १७४५ ईसवी के पश्चात बसोहली शैली का स्थान स्थानीय

राज्यों की निजी शैलियाँ ग्रहण करने लगीं। १७३९ ई० में नादिरशाह के आक्रमण तथा १७४७ ई० में अहमदशाह दुर्रानी (अब्दाली) के आक्रमण के पश्चात सिक्खों और मराठों के आक्रमणों से दिल्ली राज्य का जब विध्वंस हो गया, तो हिन्दू एवं मुसलमान चित्रकार दिल्ली छोड़कर पुनः पहाड़ी राज्यों की ओर गये। चित्रकारों की यह दूसरी धारा कांगड़ा में पहुँची जिससे कांगड़ा शैली का विकास हुआ।

बसोहली की चित्रकला
(बसोहली शैली)

बसोहली की स्थिति—बसोहली राज्य के अन्तर्गत ७४ ग्राम थे जो आज जसरौटा जिले की बसोहली तहसील के अन्तर्गत आते हैं। जसरौटा जिला जम्मू की सीमा में है। बसोहली आज जम्मू तथा कश्मीर राज्य के अन्तर्गत है। बसोहली क्षेत्र की दृष्टि से नगण्य, छोटा सा राज्य था परन्तु उसका सांस्कृतिक क्षेत्र में विशेष योगदान होने के उसका अपना महत्त्व है।

बसोहली के कला संरक्षक राजा—बसोहली का राजवंश अपने लिए पांडवों की संतान मानता था। बसोहली राज्य का संस्थापक राजा भोगपाल (७६५ ई०) था। वह कुल्लू राजवंश का था और उसने दिल्ली के राजा की शक्ति को समाप्त करके बेलोर राज्य और बेलोर या बालापुर राजधानी की स्थापना की। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सोलहवीं शताब्दी तक बसोहली के राजाओं का विशेष महत्त्व नहीं है। बसोहली का राजा कृष्णपाल सर्वप्रथम अकबर के समय में १५६० ई० में मुगल दरबार में बहुमूल्य भेंटों सहित उपस्थित हुआ। इस समय पहाड़ी क्षेत्रों के छोटे-छोटे ठाकुर शासक आपस में राज्य विस्तार तथा सत्ता के लिए लड़ते रहते थे।

कृष्णपाल के पश्चात् उसका पौत्र भूपतपाल (१५९८-१६५५ ई०) राजा हुआ परन्तु उसका समकालीन नूरपुर का राजा जगतसिंह उससे ईर्ष्या करने लगा। उसने मुगल सम्राट जहाँगीर को भूपतपाल के विरुद्ध भड़का दिया, जिसके फलस्वरूप भूपतपाल को मुगल कारागार में बंद कर दिया गया और नूरपुर के राजा जगतसिंह की सेना ने बसोहली पर अधिकार कर लिया। परन्तु भूपतपाल मुगल कारागार से निकल भागा और उसने अपने सामंतों की सहायता से पुनः नूरपुर की सेना को पराजित कर १६२७ ईसवी में राज्य प्राप्त कर लिया। उसने ही आधुनिक नगर बसोहली की स्थापना की और वह शाहजहाँ के दरबार में उपस्थित हुआ। शाहजहाँ का सम्मान करते हुए भूपतपाल को एक चित्र में दर्शाया गया है जो डोगरा आर्ट गैलरी (जम्मू) में सुरक्षित है। भूपतपाल का बसोहली शैली में बना एक चित्र प्राप्त है परन्तु वह समसामयिक चित्र नहीं है।

भूपतपाल के पश्चात् १६३५ ईसवी में उसका पुत्र संग्रामपाल १२ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। वह इतना सुंदर तथा सुकुमार युवराज था कि जब वह शाहजहाँ के दरबार में सम्मानित हुआ तो शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह की बेगमों ने उसको देखने की इच्छा प्रकट की।

इस कारण उसको अन्तःपुर में ले जाया गया जहाँ उसके सौन्दर्य पर विमुग्ध बेगमों ने उसको अनेक उपहार भेंट किये। इस समय ही संग्रामपाल का मुगल दरबार के चित्रकारों से परिचय हुआ होगा और सम्भवतः उसने ही इन मुगल चित्रकारों से बसोहली चलने के लिए कहा हो। संग्रामपाल के पश्चात् उसका छोटा भाई हिन्दालपाल (१६७३-१६७८ ई०) राजा बना। उसका एक व्यक्ति-चित्र पंजाब संग्रहालय, पटियाला में प्राप्त है। हिन्दालपाल के पश्चात् कृपालपाल (जन्म १६५० ई०) गद्दी पर बैठा। उसकी दो रानियाँ थीं। इनमें से एक रानी बन्धाल की राजकुमारी थी और दूसरी जो उसकी प्रिय रानी थी, मनकोट की राजकुमारी थी। कृपालपाल विद्वान था तथा कला-प्रेमी राजा था उसके शासनकाल में बसोहली कला का सर्वोत्तम विकास हुआ और उसने कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया। राजा कृपालपाल का राज्यकाल (१६७८ ई० से १६९३ ई०) तक पन्द्रह वर्ष माना जाता है।

कृपालपाल के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र धीरजपाल (१६९३-१७२५ ई०) गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के समान कला अनुरागी राजा था परन्तु चम्बा के राजा उजागर सिंह के साथ युद्ध करता हुआ रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुआ। धीरजपाल के पुत्र मेदनीपाल (१७२५-१७३६ ई०) ने चित्रकारों को प्रोत्साहन प्रदान किया और उसने उजागर सिंह को भी पराजित कर पीछे हटा दिया। उसके समय में बसोहली के चित्रों का सुचारु रूप से निर्माण हुआ। मेदनीपाल के पश्चात् जितपाल (१७३६-१७५७ ई०) बसोहली की गद्दी पर बैठा। इसके समय में जम्मू के राजाओं की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई और महाराजा ध्रुवदेव का जम्मू के पहाड़ी राज्यों में बहुत अधिक प्रभुत्व स्थापित हो गया।

१७५७ ई० में अमृतपाल बसोहली का राजा बना। उसने जम्मू के महाराजा रंजीतदेव की पुत्री से १७५६ ई० में विवाह किया और बसोहली पर जम्मू की शक्ति स्थापित होने लगी। इसी समय पंजाब-क्षेत्र में अहमदशाह दुर्रानी और सिक्खों के आक्रमणों के कारण कश्मीर और भारत का व्यापार-मार्ग बदल गया और नवीन मार्ग बसोहली की ओर से बन गया जिससे बसोहली राज्य की समृद्धि बढ़ गई। अमृतपाल एक सुयोग्य शासक था। इस समय बसोहली नगर चित्रकला का केन्द्र बन गया और इसी राजा के राज्यकाल में बसोहली में भी कांगड़ा शैली ने बसोहली शैली का स्थान ग्रहण कर लिया। विजयपाल (१७७६-१८०६ ई०) तेरह वर्ष की आयु में बसोहली का राजा बना और इसी समय में चम्बा के राजा राजसिंह ने सिखों की सहायता से बसोहली पर विजय प्राप्त कर ली।

१८०६ ई० में समस्त पहाड़ी राज्य महाराजा रणजीतसिंह के अधीन आ गए। बसोहली का राजा महेन्द्रपाल (१८०६-१८१३ ई०) कलाप्रेमी शासक था। उसने जसरौटा की राजकुमारी से विवाह किया। जब वह महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में १८१३ ई० लाहौर में उपस्थित हुआ तो वह बीमार पड़ गया और उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् भूपेन्द्रपाल (१८१३-१८३४ ई०) गद्दी पर बैठा और पिता के समान ही उसकी भी शीघ्र मृत्यु हो गई। १८४५ ई० में बालक कल्याणपाल राजा बना और इसी समय रणजीतसिंह ने बसोहली राज्य

को जम्मू की जागीर बनाकर जम्मू के राजा हीरासिंह को सौंप दिया। इस प्रकार बसोहली की कलानिधियाँ जिनमें चित्र भी थे, लाहौर (?) सिक्खों के हाथ आ गईं। १८४५ ई० में बलोरिया राजपूतों ने सिक्खों को बसोहली से बाहर निकालकर, ग्यारह वर्षीय कल्याणपाल को पुनः बसोहली का राजा बनाया। परन्तु १८४६ ई० से जम्मू तथा कश्मीर राज्य महाराजा गुलाबसिंह के हाथ में आ गए और कल्याणपाल के लिए अनुवृत्ति मिल गई। कल्याणपाल ने सिरमौर तथा सालंगरी की राजकुमारियों से विवाह किया, जिससे यह नगर भी कालान्तर में बसोहली कला के केन्द्र बन गए। १८५७ ई० में सन्तानहीन राजा कल्याणपाल की मृत्यु के पश्चात बसोहली राजवंश समाप्त हो गया।

रावी नदी के दाहिने तट पर स्थित बसोहली नगर जो किसी समय जम्मू की सात आश्चर्य की वस्तुओं में से एक था, आज अपनी पुरातनगाथाओं को अपने वैभवहीन राजप्रसादों तथा अट्टालिकाओं के अवशेषों में छुपाए मौन खड़ा है। यह राजप्रसाद आज चमगादड़ों और पक्षियों का आवास-स्थल बन चुका है।

आधुनिक बसोहली नगर की स्थापना राजा भूपतपाल ने १६३५ ईसवी में की थी। इस नवीन राजधानी में उसने तथा उसके उत्तराधिकारियों ने विभिन्न राजमहलों का निर्माण कराया। मेदनीपाल ने रंगमहल और शीशमहल बनवाये जो नायिका-भेद आदि विषयों पर आधारित भित्तिचित्रों से सुसज्जित थे, परन्तु आज ये चित्र नष्ट हो गए हैं। बसोहली राज्य के अतिरिक्त यह शैली अनेक पहाड़ी राज्यों में भी विकसित हुई।

बसोहली शैली के चित्रों का विषय—समकालीन सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का कला पर सदैव प्रभाव पड़ा है और प्रत्येक कला समकालीन साहित्य, दर्शन तथा लोकभावना से प्रभावित हुई है। वास्तव में ग्यारहवीं शताब्दी में जो वैष्णव धर्म आरम्भ हुआ, उसका पूर्ण विकास उत्तरी भारत में सोलहवीं शताब्दी में हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में श्री वल्लभाचार्य ने ब्रज को अपना केन्द्र बनाया और यहीं से ही वल्लभाचार्य ने वैष्णव धर्म के उपदेश दिये। उनके अनुयायियों में कविवर सूरदास, मीरा, केशवदास तथा बिहारी के नाम प्रमुख हैं जिनकी रचनाओं को उत्तरी-भारत में बहुत लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त हुआ। इन कवियों ने भगवान को जीवन में खोजने की चेष्टा की और उन्होंने विष्णु के विभिन्न रूपों में विशेषतया श्रीकृष्ण और श्रीराम को अपना आराध्य देव माना।

धार्मिक चित्र—कृष्ण का जीवन भारत के सरल, साधारण लोकजीवन से सन्निकट है। इसी कारण कृष्ण भारतवर्ष में बहुत प्रिय देवता माने गए हैं। वास्तव में कृष्ण का उद्दण्डतापूर्ण बाल्यकाल और यौवन का जीवन कृषकों, जंगलों, ग्वालों, गोपियों, पशुओं और पक्षियों से सम्बन्धित था और गरीब जनता से बहुत मिलता-जुलता था। वैष्णव धर्म राजस्थान तथा उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्र तक ही सीमित न रहा बल्कि पहाड़ी क्षेत्रों में भी पहुँच गया और पहाड़ी चित्रकार की प्रेरणा का मुख्य आधार बना। बसोहली शैली के चित्रों में वैष्णव धर्म की विचारधारा और भक्ति भावना दिखाई पड़ती है। इस शैली में विष्णु तथा उनके दस अवतारों

के चित्र प्राप्त है। इस शैली में चित्रित रामायण की दो प्रतियाँ भी प्राप्त हैं, जिनमें से एक तो बसोहली में चित्रित की गई है और दूसरी कुल्लू में चित्रित की गई है। रामायण तथा भागवतपुराण वैष्णव सम्प्रदाय के कारण इन चित्रकारों का प्रमुख चित्र विषय बने।

काव्य तथा रागमाला—चौदहवीं शताब्दी में रचित भानुदत्त की 'रसमंजरी' बसोहली के राजा कृपालपाल का प्रिय काव्य ग्रंथ था। (देखिए छाया फलक सं० ८) इस ग्रंथ में नायक-नायिका भेद, रसों तथा शृंगार का सुंदर वर्णन है, परन्तु कृष्ण का वर्णन नहीं है। सम्भवतः राजा कृपालपाल ने ही अपने चित्रकारों से रसमंजरी के चित्रों में कृष्ण को आदर्श प्रेमी का रूप दिलाया हो। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की नायिकाएँ जैसे उत्का तथा अभिसारिका आदि भी आरम्भिक चित्रकारों का चित्रणविषय बनीं।

रसमंजरी के अतिरिक्त बारहवीं शताब्दी की जयदेवकृत गीतगोविंद काव्य रचना पर भी सुंदर चित्र बनाये गए।[1] परवर्ती चित्रकारों ने 'बारह-मासा' चित्रावलियों के निर्माण में विशेष रुचि प्रदर्शित की। इन विषयों के अतिरिक्त बसोहली शैली में 'रागमाला' पर आधारित चित्र भी प्राप्त होते हैं, जिनके उदाहरण 'भारत कलाभवन' काशी में प्राप्त हैं। इन रागमाला चित्रों तथा बारहमासा चित्रों में कृष्ण और राधा को नायक तथा नायिका का रूप प्रदान किया गया है।

व्यक्ति चित्र—चित्रकार प्रायः दरबार का एक सदस्य होता था और इस कारण उसका प्रमुख उद्देश्य राजाओं, दरबारियों तथा दरबार के अन्य सम्मानित सदस्यों जैसे विद्वानों, संगीतज्ञों, संतों आदि के चित्र बनाना था। इस प्रकार बसोहली में चित्रकार ने समसामयिक इतिहास को अमर बना दिया है।

मानव आत्मा—चित्रकार ने राधा और कृष्ण के प्रेम में मनुष्य की हृदयगत भावनाओं को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार कृष्ण के विरह में गोपियाँ व्याकुल है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा भी परमात्मा (कृष्ण) के संयोग के लिए व्याकुल है। इस प्रकार बसोहली शैली के चित्रों में रहस्यात्मकता का मधुर संयोग है।

बसोहली शैली के चित्रों की विशेषताएँ

बसोहली शैली के चित्रों की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जिनके कारण इस शैली के चित्रों को राजस्थानी शैलियों तथा कांगड़ा शैली के चित्रों से पृथक किया जा सकता है। यद्यपि बसोहली शैली में कांगड़ा शैली जैसा सौकुमार्य, कोमलता और परिमार्जन नहीं है तो भी उसमें सरलता, सरसता, शक्ति और चमकदार रंगों की अपूर्व संवेगात्मक तीक्ष्णता है जो इस कला को एक महान स्तर पर पहुँचा देती है।

बसोहली के चित्रों में प्रत्येक विवरण को स्वच्छता के साथ सरल और शक्तिशाली ढंग से वर्णित किया गया है। काव्यमय भावनाओं को कलाकारों ने मधुरता, सरलता और सरसता के साथ अभिव्यक्त किया है। बसोहली शैली के चित्रकार ने कम से कम परिश्रम के द्वारा अधिक से अधिक

भावाभिव्यक्ति की है, यद्यपि इन चित्रों में आध्यात्मिकता के स्थान पर वासना की अधिक झलक है। बसोहली शैली के कुछ चित्र नितान्त सरल है और उनमें तनिक भी रहस्यात्मकता, व्यंग्य या ध्वनि नहीं है, परन्तु प्रत्येक शैली का मूल्यांकन उसकी उत्कृष्ट कलाकृतियों के आधार पर किया जाता है। बसोहली शैली के चित्रों में अभिव्यक्ति का ठेठपन, स्पष्टता, शक्ति, आकर्षक रंगों की चमक और भावों की मधुरता है जो अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है।

चित्रों के हाशिये तथा लेख—बसोहली शैली के चित्रों के हाशिये अधिकांश गहरे लाल रंग की पट्टी से बनाये गए हैं, तथापि कुछ चित्रों के हाशिये में गहरी लाल रंग की पट्टी के स्थान पर गहरी पीले रंग की पट्टी का प्रयोग किया गया है। ये हाशिये सादा सपाट रंग की पट्टियों से बनाये गए जो मुगल चित्रों के अलंकृत हाशियों से सर्वथा भिन्न प्रकार के है।

रसमंजरी तथा गीतगोविंद पर आधारित चित्रों की पृष्ठिका पर संस्कृत में छन्द लिखे हैं, परन्तु लाल हाशियों पर सफेद रंग से टाकरी लिपि में लेख लिखे गए हैं।

रंग—कांगड़ा के उत्तम चित्रों के सौन्दर्य का रहस्य उनकी छन्दमय योजना है, जबकि बसोहली शैली के चित्रों के आकर्षण का मुख्य कारण, उनके चटक घुल-घुहाते रंगों की पवित्रता और प्राथमिक विरोधी रंगों का प्रयोग है। बसोहली शैली के चित्रों के रंगों में अन्तर्भेदनी आकर्षण है। चमकदार और अमिश्रित लाल तथा पीले रंग, जिनका कलाकार ने स्वतंत्रता से प्रयोग किया है, दर्शक के नेत्रों में गहरे बैठ जाते हैं और उसके हृदय को उद्वेलित कर देते हैं। बसोहली के चित्रकारों ने रंगों का प्रयोग प्रतीकात्मक आधार पर किया है। पीला रंग बसंत तथा सूर्य के ताप या प्रकाश का प्रतीक होता है। साथ ही पीला रंग ताप और प्रेमियों के प्रेम-ज्वर का प्रतीक भी है। बसोहली के चित्रकारों ने रिक्थ और बड़े-बड़े धरातल खण्डों में स्वतंत्रता से सूर्य प्रकाश दिखाने के लिए पीले रंग का प्रयोग किया है। नीला रंग कृष्ण तथा वर्षा के बादलों का प्रतीक है। लाल रंग प्रेम के देवता का प्रतीक है और बसोहली शैली के शृंगारिक चित्रों में इस रंग के प्रयोग से चार चाँद लग गए हैं। बसोहली शैली के चित्रों में पीले, लाल तथा नीले रंग का प्राथमिक विरोधी प्रयोग आनन्ददायक और सुंदर है।[1] चित्रों में रंग इतनी कुशलता और सतर्कता से लगाये गए हैं कि वह मीने के समान चमकदार दिखाई पड़ते हैं। विशेष रूप से 'गीत-गोविंद' के चित्रों में लाल, पीले, ग्रे, नीले, हरे रंगों का प्रयोग सुंदरता से किया गया है।

बसोहली शैली के चित्रों में सोने तथा चाँदी के रंगों का प्रयोग कपड़ों की कसीदाकारी तथा अन्य साज-सामान के अलंकरण में किया गया है परन्तु चाँदी के रंगों का प्रयोग खिड़कियों, स्तम्भों, छज्जों, जालियों तथा कपड़ों में अधिक किया गया है। मोतियों की मालाएँ बनाने के लिए कभी-कभी मोटे उभारदार रंग का प्रयोग किया गया है, जिससे मोतियों की गोलाई के साथ उनमें उभार का आभास होता है।

प्रकृति—बसोहली शैली के चित्रों में आलंकारिक ढंग से दृश्य-चित्रण किया गया है और अधिकांश चित्रों में क्षितिज रेखा को बहुत ऊपर रखा गया है। वृक्षों की पंक्तियाँ अलग-अलग

आलंकारिक योजना में गहरी पृष्ठभूमि पर सफेद मिश्रित रंग से बनायी गई है। अधिकांश मंजनूं, आम, अखरोट तथा मोरपंखी के वृक्ष बनाये गए हैं।

वर्षा तथा बादल—बसोहली शैली की कृतियों में बादलों को झीना-झीना वक्राकार अभिप्रायों के द्वारा बनाया गया है। रसमंजरी के चित्रों में गहरे बादल बनाये गए हैं और इन बादलों में नागिन के समान चमकती हुई दामिनी की चमक दिखायी गई है। दामिनी की चमक को सोने के रंगों से दिखाया गया है। हल्की वर्षा के चित्रण के लिए चित्रकार ने छोटी-छोटी मोती जैसी झिलमिल बिन्दियों का प्रयोग किया है, परन्तु मूसलाधार वर्षा के लिए सीधी रेखाओं से जल-वृष्टि अंकित की गई है। नदी, झील या तालाब में पानी की लहरें बनाने के लए कुंडलाकार रेखाओं के अभिप्रायों का प्रयोग किया गया है। जल में कमल पुष्पों का अंकन किया गया है और कभी-कभी बगुले भी बनाये गए हैं जिससे जल का किनारा और अधिक सुंदर बन गया है।

पशु—बसोहली शैली के चित्रों में ढोरों का अंकन निजी ढंग से किया गया है। बसोहली के चित्रों में पशुओं को दुबला, पतला, भूखा, पिचके पेट वाला तथा लम्बे कान और मुड़े हुए सींगों वाला बनाया गया है। यह पशु जम्मू की स्थानीय जाति या वृंदावन की गौ-जाति के प्रतीक हैं, परन्तु कांगड़ा शैली के चित्रों में ढोरों को हृष्ट-पुष्ट और मोटा-ताजा बनाकर हरियाणा जाति के पशुओं का ही अंकन किया गया है।

पहनावा—बसोहली शैली के चित्रों में पुरुष तथा स्त्रियों का पहनावा विशेष प्रकार का है। पुरुषों को घेरदार जामा (औरंगज़ेबकालीन मुगल ढंग का) तथा पीछे झुकी पगड़ी पहने दिखाया गया है। स्त्रियों को प्रायः सूथन चोली और ऊपर से पेशवाज़ या ढीला लम्बा घेरदार चोगा पहने बनाया गया है, जो रेशमी या पारदर्शी है। स्त्रियों को कभी-कभी छींटदार घाघरा, चोली और पारदर्शी दुपट्टा ओढ़े दिखाया गया है। कृष्ण को पीताम्बर तथा पीली धोती पहने ही बनाया गया है और सिर पर मुकुट तथा मोरपंख चित्रित किया गया है।

आकृतियाँ तथा शारीरिक सौन्दर्य—बसोहली के चित्रकारों ने रंग का मौलिक और सजीव प्रयोग ही नहीं किया है अपितु स्त्री तथा पुरुष मुखाकृति को नवीन रूप प्रदान किया है। बसोहली शैली के चित्रों में मानव आकृतियों के चेहरों की बनावट विशेष प्रकार की है, जिसमें ढलवा माथा तथा ऊँची नाक को एक ही प्रवाहपूर्ण, अटूट रेखा से बनाया गया है। नेत्रों को कमलाकार रूप प्रदान किया गया है और नेत्रों की विशालता मनमोहक तथा अबोधतापूर्ण है। बादामी वर्ण के शरीर वाली नायिका बसोहली के चित्रकार को प्रिय थी। स्त्रियों को सुकोमल और सुंदर अंग-भंगिमाओं में अंकित किया गया है जिससे उनके रूप और लावण्य की शोभा और भी मनोहारी हो गई है।

आभूषण—बसोहली शैली के चित्रों में आकृतियों को आभूषणों से सुसज्जित बनाया गया है, और राक्षसों को भी आभूषणों से युक्त बनाया गया है। रत्नों से जड़े मुकुट, हार, कुंडल, भुजबंद सुंदरता के साथ बनाये गए हैं। इन आभूषणों में विभिन्न हीरे तथा रत्न खचित हैं।

बिछड़ जाने के कारण जंगल में राह से भटक गया और एक कुएं में गिर पड़ा। वह कई दिन तक अपने राज्य में वापस नहीं आया, अतः उसकी रानी सती हो गई। परन्तु एक साथी ने उसको कुएं से निकाल लिया और वह अपने राज्य पहुँचा, परन्तु कांगड़ा की गद्दी पर उसका छोटा भाई राजा बन चुका था। अतः उसने गुलेर आकर अपना नवीन राज्य हरिपुर गुलेर स्थापित किया। लगभग २०० वर्ष के पश्चात् उस राज्य की सत्रहवीं शताब्दी में प्रतिष्ठा हुई। यहाँ की राजधानी हरिपुर गुलेर अनेक वर्षों तक कला का केन्द्र रही।

गुलेर की स्थिति—गुलेर की भौगोलिक स्थिति के कारण गुलेर की महत्ता शीघ्र स्थापित हो गई। यह राज्य कांगड़ा के दक्षिण में पंजाब के मैदानी भाग के सन्निकट था। इस राज्य को मुगल संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

गुलेर के राजा—गुलेर के राजा रूपचंद (१६१०-१६३५ ई०) को शाहजहाँ का समर्थन मिला। उसके पश्चात् मानसिंह (१६३५-१६६१ ई०) तथा बिक्रमसिंह (१६६१-१६७५ ई०) ने राज्य की शक्ति को बढ़ाया। गुलेर राज्य में राजा दलीपसिंह (१६६५-१७४४ ई०) के समय से सांस्कृतिक जागरण होता दिखाई देता है। यह सांस्कृतिक जागरण गुलेर के राजा गोवर्धनसिंह (१७४४-१७७३ ई०) के समय में उच्च विकास को प्राप्त हुआ।

गुलेर के राजा तथा चित्र—गुलेर का प्रथम राजा हरिचंद पहले कांगड़ा का शासक रह चुका था और इस कटोच राजवंश के परिवार का वरिष्ठ सदस्य था और वह कांगड़ा के राजा का बड़ा भाई था। इस कारण कांगड़ा राज्य सदैव ही गुलेर को सम्मान की दृष्टि से देखता रहा और गुलेर राज्य के पश्चात् ही कांगड़ा में सांस्कृतिक विकास हुआ। गुलेर कांगड़ा घाटी के नितान्त निचले क्षेत्र में स्थित था, इस कारण पंजाब तथा गुलेर के यातायात साधन सुगम थे। पहले बताया जा चुका है कि बसोहली के राजा कृपालपाल (१६७८-१६९३ ई०) तक बसोहली शैली पंजाब की पहाड़ियों में प्रचलित हो चुकी थी। इस समय में चम्बा शैली का भी प्रसार हो रहा था। परन्तु १७०० ई० के पश्चात् बसोहली शैली के चित्रकार शनैः शनैः अदृश्य होने लगे जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न पड़ोसी राज्यों की कला पर एक परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा। यहाँ पर यह अधिक महत्त्व की बात है कि सुदूर दक्षिण में स्थित गुलेर राज्य में यह परिवर्तन सबसे पहले दृष्टिगोचर हुआ।

गुलेर के चित्रकार—गुलेर के राजा गोवर्धन सिंह (गोवर्धनचन्द) के समय में निश्चित रूप में चित्र बनने लगे। लगभग १७४० ई० में मैदानी प्रदेश से आए एक मुगल कलाकार ने गुलेर के राजदरबार में संरक्षण प्राप्त कर लिया। इस कलाकार की शैली में अत्यधिक नवीनता और स्वच्छता (औरंगज़ेबकालीन मुगल शैली) थी। इस चित्रकार की कार्य पद्धति गुलेर के एक अन्य कलाकार नैनसुख की शैली से अत्यधिक मिलती-जुलती है। नैनसुख ने कुछ समय के पश्चात् जम्मू के राजा बलवंतसिंह के राज-परिवार के लिए भी चित्र बनाये हैं। इन दोनों चित्रकारों की शैली इतनी समान प्रतीत होती है कि जिससे सिद्ध होता है कि

नैनसुख ने गुलेर में चित्र बनाये हैं। अब यह प्रमाणित भी हो चुका है कि नैनसुख तथा उसके परिवार के चित्रकारों ने गुलेर में चित्र बनाये हैं। दूर-दूर के स्थानों से यात्री हरिद्वार अपने परिवार के मृतकों के पुष्प गंगा में प्रवाहित करने या हरिद्वार में गंगा स्नान करने आते हैं, यहाँ पर ये यात्री पंडों की बही में अपना नाम तथा वंशावली, पता इत्यादि सूची के रूप में लिखाते या लिखते हैं। इस प्रकार की गुलेर से सम्बन्धित पुरानी बहियाँ सरदार पंडित रामरखा तथा पंडित प्यारेलाल के पास सुरक्षित हैं। इस बही में पंडे अपनी धर्मशाला में ठहरने वाले तीर्थ यात्रियों का ब्योरेवार विवरण लिखते हैं। इन बहियों से चम्बा, कांगड़ा, गुलेर तथा अन्य पहाड़ी राज्यों के चित्रकारों की हरिद्वार यात्राएँ प्रमाणित हैं जिनसे उनके स्थान, वंश आदि का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सरदार रामरखा की बही के एक पृष्ठ पर नैनसुख नामक चित्रकार का एक लेख प्राप्त है, जो इस प्रकार है

> गोत्र सांडल
>
> लिखित नैणा तरखान चत्रेहरा गोलेरदा वासी। बेटा सेऊए दा। पोत्रा हसनूएदा। पड़पौत्रा भारधुए दा। बिद्ध पड़पौत्रा दाते दा। नानका पख लिख्या। प्रोहत हरीराम मन्या। नाना दास। पड़नाना दूहड़ू। बिधिपड़नाना हरिया। जे भाईए माणके दा लिख्या जे दुए प्रोहते कंछ निकलें ता सेहे लिख्या दा प्रमाण। एह तकरार करी लिखी दत्ता। संमत १८२० जेष्ठ प्र० १ लिख्या।

उपरोक्त लेख से स्पष्ट है कि नैणा (नैनसुख) गुलेर का निवासी था। वह सेऊ का बेटा हसनू का पोता, भरधुए का पड़पोता तथा दाते का विद्धपोता था। नैनसुख के वंशजों ने समय-समय पर अनेक राज्यों से आकर हरिद्वार की इसी बही में अनेक लेख दिए हैं जिससे इस वंश की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है और यह भी प्रमाणित हो जाता है कि इस वंश के लोग अनेक पहाड़ी राज्यों में राजाओं का संरक्षण प्राप्त कर जा बसे थे। इस वंश के चित्रकार १९ पहाड़ी राज्यों में जाकर बसे, यह दूसरे प्रमाणों से भी सिद्ध हो चुका है। इसी वंश के निक्का के वंशज रजौल निवासी श्री भूपेन्द्रप्रकाश तथा श्री चन्नूलाल रायना के पास सियालकोटी कागज़ पर बना एक आरेख चित्र सुरक्षित है जिससे स्पष्ट है कि इस वंश के कलाकारों ने अनेक राज्यों की कला को प्रभावित किया। इस आरेख में एक योगनी के समान काला देवी की आकृति बनायी गई है जो एक पैर पर खड़ी है और अपनी १५ भुजाएँ मकड़ी के जाले के समान फैलाए हैं। इन भुजाओं के पास फीकी स्याही में निम्न १९ पहाड़ी राज्यों के नाम अंकित हैं:

१.	श्री गुलेर	२.	चम्बा
३.	किला कांगड़ा	४.	मण्डी
५.	सुकेत	६.	कहलूर
७.	कांगड़ा नादौन	८.	जसवान
९.	शीबा	१०.	दातारपुर

११. श्री गुरुबख्श सिंह
१२. रामगढ़िया जासा सिंह
१३. सुजानपुर
१४. मनकोट
१५. जम्मू
१६. शाहँपुर
१७. श्री जयसिंह
१८. नूरपुर
१९. बसोहली

इन नामों से स्पष्ट है कि इस वंश के चित्रकार इन पहाड़ी राज्यों में चित्र बना रहे थे। नैनसुख दो भाई थे। उसके बड़े भाई का नाम मानक (माणक्कू) था और नैणा या नैनसुख छोटा था। माणक्कू की वंशावली में आगे माणक्कू के पुत्र फातू तथा कुशाल फिर पौत्रों में माधो, मोलक, काशीराम के नाम प्राप्त होते हैं। नैनसुख की वंशावली में आगे उसके चार पुत्रों में रांझा, काम, गौडू तथा निक्का के नाम प्राप्त होते हैं। गौडू तथा निक्का के पुत्रों में सुखिया (सुखनू), सुलतानू तथा हरखू (हरखू), गोकुल, छज्जू के नाम प्राप्त होते हैं। रांझा हरिद्वार आया था। काम का पुत्र लालसिंह था। आगे चलकर इनके वंश के अनेक चित्रकारों के नाम भी प्राप्त हैं।

राजा गोवर्द्धन सिंह (१७३०-७३ ई०) एक कुशल शासक था और उसने सामंतीय ख्याति प्राप्त की। उसे घुड़सवारी का बड़ा शौक था। उसके अनेकों ऐसे चित्र प्राप्त हैं जिनमें राजा को घुड़सवारी करते चित्रांकित किया गया है। गुलेर शैली के लगभग चौदह ऐसे चित्र प्राप्त हैं जो रामायण पर आधारित हैं और राजा दिलीपसिंहकालीन हैं।

गुलेर शैली की विशेषता—गुलेर में १७४० ई० से १७७० ई० के मध्य में दो शैलियों में चित्र बनाये जा रहे थे जिनमें एक चम्बा या बसोहली शैली थी और दूसरी बाहर से आये मुगल कलाकारों की शैली थी। इन दोनों शैलियों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया परन्तु फिर भी दोनों की विशेषताएँ पहचानी जा सकती हैं। मुगलशैली के चित्रों में राजा और उसके दरबार का चित्रण अधिक प्राप्त होता है और धार्मिक चित्र कम प्राप्त होते हैं। इन चित्रों में भंगिमाएँ तथा मुद्राएँ सुंदर हैं। प्रत्येक आकृति की कुछ अपनी व्यक्तिगत विशेषता और छवि है। इन चित्रों में रेखा बहुत ही कोमल, महीन (बारीक) और प्रवाहपूर्ण है। इन चित्रों में प्रकृति की यथार्थ छटा बिखरी हुई है, परन्तु बसोहली शैली में बने चित्रों की सीमा रेखाएँ शिथिल, सुनिश्चित आलंकारिक योजनाबद्ध है तथा सपाट लाल धरातल का अधिक प्रयोग है। इन चित्रों में लाल, पीले, नीले तथा सफेद रंगों पर आधारित रंगयोजना में ली गई है। इन चित्रों में स्त्रियों के चित्रण में भौतिकवादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है और चित्रकार ने स्त्रियों के छन्दमय शारीरिक सौन्दर्य तथा यौन-प्रतीकों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है, जिनमें काव्यात्मकता और परिमार्जित भावना दृष्टिगोचर होती है।

१७७३ ईसवी में राजा गोवर्द्धन सिंह की मृत्यु के समय गुलेर में अनेक चित्रकार इन शैलियों में चित्र बना रहे थे और एक निश्चित शैली स्थापित नहीं हो पाई थी। यद्यपि इस समय तक अभिव्यंजना के सिद्धान्तों, प्रतीकों आदि में एक नवीनता आ गई थी और किसी नवीन उत्तम शैली के विकास के लिए एक पृष्ठभूमि पूर्ण रूप से बनकर तैयार हो गई थी।

गुलेर शैली के चित्रों का विषय—गुलेर शैली के चित्रों के विषय सामान्यता चार वर्गों में रखे जा सकते हैं जो निम्न हैं—

(१) **रामायण तथा महाभारत**—गुलेर शैली के अधिकांश चित्रों का विषय रामायण तथा महाभारत की प्रमुख घटनाएँ हैं। गुलेर शैली की रामायण तथा महाभारत की चित्रावलियाँ प्राप्त हैं।

(२) **दरबारी चित्र**—इस शैली में राजदरबार या अन्तःपुर के चित्र भी बनाये गए हैं। इन चित्रों में राजा गोवर्द्धनसिंह के घोड़े की सवारी के चित्र तथा नाच आदि के चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

(३) **नायिका-चित्र**—नायिका भेद सम्बन्धी चित्र इस शैली की एक विशेषता हैं। अनेक प्रकार की नायिकाएँ कांगड़ा शैली के समकक्ष गुलेर में पहले ही बनाई जाने लगी थीं। इन नायिकाओं में कृष्णपक्ष अभिसारिका, उत्का तथा प्रोषितपतिका नायिका का गुलेर शैली में बहुत भावपूर्ण चित्रण है।

(४) **व्यक्ति-चित्र**—गुलेर शैली में अनेक राजाओं के व्यक्ति-चित्र प्राप्त हैं जिनमें पर्याप्त सजीवता है।

कांगड़ा की चित्रकला
(कांगड़ा शैली)

अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में पंजाब की पहाड़ियों में स्थित कांगड़ा राज्य भारतीय चित्रकला का एक महान केन्द्र बन गया। यहाँ चित्रकारों की लगभग एक सौ पचास वर्ष की साधना के परिणामस्वरूप इस शैली में सर्वोपरि भावना और कौशल का लालित्य एक बार दीप की उस अंतिम लौ के समान जगमगा उठा जिसकी लौ अत्यधिक प्रकाशित हो फिर अंधकार में सदैव के लिए विलीन हो जाती है। इस शैली में मुगल और परम्परागत प्राचीन भारतीय कला एवं राजस्थानी हिन्दू कला और भावना का अपूर्व सम्मिश्रण है। अप्रत्यक्ष रूप से इस शैली पर पाश्चात्य प्रभाव भी पड़ा जिससे चित्रों की सुंदरता और कोमलता में श्रीवृद्धि हुई है।

संसारचंद—कांगड़ा शैली की कृतियों के सृजन का समय लगभग १७८० ई० से आरम्भ होता प्रतीत होता है। १७५१ ईसवी से १७७४ ईसवी तक कांगड़ा में कटोचवंशी राजपूत राजा घमंडचंद का राज्य था। राजा घमंडचंद को अत्यधिक सामन्तीय ख्याति प्राप्त हुई परन्तु वह चित्रकला के प्रति उदासीन ही रहा और उसके चार व्यक्ति चित्र ही केवल प्राप्त हैं जो सिक्ख शैली के हैं और भद्दे हैं। लगभग १७७५ ई० में कांगड़ा के राजा संसारचंद ने चित्रकला के प्रति अत्यधिक प्रेम प्रदर्शित किया। वह स्वयं एक चित्रप्रेमी, साहित्यप्रेमी और संगीत मर्मज्ञ शासक था। उसे लगभग बारह या तेरह वर्ष की आयु पर ही चित्र संग्रह में बहुत रुचि थी। इसी समय सन्निकट सम्बन्धी रियासत

गुलेर में अच्छे चित्रकार काम कर रहे थे और इस समय तक गुलेर शैली परिनिष्ठित रूप धारण कर चुकी थी। राजा संसार चंद जैसे कला संरक्षक के कला-प्रेम के कारण और पड़ोसी गुलेर-राज्य में उच्च कला-विकास हो जाने के कारण कांगड़ा में भी चित्रकला का उदय आरम्भ हुआ।[1]

राजा संसारचंद का कला-प्रेम--जिस समय गुलेर की चित्रकला एक निश्चित पृष्ठभूमि तैयार कर चुकी थी उसी समय कांगड़ा के राजसिंहासन पर राजा संसारचंद (१७७५-१८२३ ई०) ने दस वर्ष की आयु में पदार्पण किया। १७८६ ई० तक राजा संसारचंद का प्रभुत्व पहाड़ी राज्यों पर स्थापित हो गया। राजा संसारचंद को ललित कलाओं से अत्यधिक प्रेम था। बाल्यकाल में राजा संसारचंद की चित्रों में विशेष रुचि होने का परिचय प्राप्त होता है। लगभग बारह या तेरह वर्ष की आयु पर उसने चित्रों का संग्रह किया और उसके द्वारा चित्रों के निरीक्षण किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते है। राजा का यह चित्र-प्रेम जीवन में सदैव बना रहा। राजा का यह कला-प्रेम १८२० ई० तक निश्चित रूप से चलता रहा क्योंकि अंग्रेजी यात्री मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि--"राजा संसारचंद के दरबार में इस समय भी कई चित्रकार काम कर रहे थे। राजा को चित्रकला से बहुत प्रेम था और उसके पास चित्रों का एक विशाल संग्रह था।" (१८२० ई०) राजा संसारचंद वैष्णव धर्म का अनुयायी था और कृष्ण का भक्त था। वैष्णव धर्म का उसके राज्य में भी ज़ोर था। राजपूत परम्पराओं के अनुसार यौन-सम्बन्ध, वधू या किसी रखैल तक सीमित था इस कारण दबी हुई यौन-सम्बन्धी इच्छाएँ और भावनाएँ चित्र की कल्पना में स्वच्छन्द हो उठीं और काव्यमय रूप धारण करने लगीं। कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के रूप में इन भावनाओं को एक साधन प्राप्त हो गया। इसी कारण स्त्री के प्रति प्रेम का रूप राधा ने ग्रहण कर लिया और राधा के रूप में स्त्री के प्रति पुरुष का प्रेम प्रस्फुटित होने लगा। कांगड़ा शैली के चित्रकारों के प्रमुख केन्द्र गुलेर, नूरपुर, तीरासुजानपुर तथा नादौन थे।

गुलेर शैली का कांगड़ा में प्रवेश--जिस समय राजा संसारचंद कांगड़ा का राजा हुआ तो उसको कृष्ण की भक्ति और चित्रकला ने आकर्षित किया। यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय के कुशल पहाड़ी चित्रकारों को उसने अपने दरबार की ओर कैसे आकृष्ट किया। सम्भवतः राजा संसारचंद का कला-प्रेम और १७७० ई० में गुलेर के कला संरक्षक राजा गोवर्द्धन सिंह की मृत्यु भी कलाकारों के कांगड़ा दरबार में आने का कारण हो सकती है। निश्चित रूप से गुलेर का एक चित्रकार निक्का लगभग १७७० ई० में चम्बा गया और कुछ अन्य चित्रकार गुलेर छोड़कर गढ़वाल चले गये। गोवर्द्धन सिंह की मृत्यु के पश्चात् गुलेर संकटग्रस्त रहा और ऐसी परिस्थिति में जब १७८० ई० तक राजा संसारचंद की कला संरक्षक के रूप में ख्याति हो चुकी थी, तो उस समय तक अनुमानतः गुलेर के कई कलाकारों ने इस राजा की सेवाएँ ग्रहण कर ली होंगी। इस प्रकार इन कलाकारों के नवीन प्राश्रय प्राप्त करने के पश्चात् ही गुलेर की कला ने कांगड़ा में अपनी परिपक्व अवस्था को प्राप्त किया।

88

कांगड़ा की चित्रकला—कांगड़ा शैली के चित्रकारों के नाम अभी तक बहुत कम प्राप्त हैं और जो नाम प्राप्त हैं उनमें फत्तु, पुरखू तथा कुशनलाल के नाम प्रमुख हैं। खण्डालावाला ने कुशनलाल को कुशला, नैनसुख के भतीजे के रूप में माना है जो ठीक है जैसा पहले बताया जा चुका है।

कांगड़ा की १७७० ई० से १८०६ ई० के मध्य की कृतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम दो महान कलाकार जो गुलेर में मुगल ढंग में चित्र बना रहे थे, अब कांगड़ा दरबार में आ गए। इन चित्रकारों के साथ अनेक साधारण कोटि के चित्रकार भी कांगड़ा दरबार में नियुक्त किये गए। इन दो चित्रकारों में से एक ने 'भागवतपुराण' का चित्रण किया है जिसमें मुगल प्रभाव है और चित्रों की शैली गुलेर के चित्रों से सम्बन्धित है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रकृति का अंकन स्वच्छ आकाश तथा वातावरण गुलेर के चित्रों जैसा है, परन्तु रेखा अधिक कोमल हो गई है, जिससे ये चित्र गुलेर शैली से पृथकत्व स्थापित कर लेते हैं। इन चित्रों में रेखा के किनारे ढौल होने के कारण एक अद्‌भुत चमक तथा उभार आ गया है।

दूसरे चित्रकार की शैली का परिचय 'बिहारी सतसई' चित्रावली में प्राप्त होता है। इन चित्रों में सीमारेखा ढौलपूर्ण नहीं है और दृश्य चित्रों में भव्यता है। इन चित्रों में गुलेर शैली जैसी निश्चित पृष्ठभूमि नहीं है और मानव आकृतियों की बनावट उत्तम है। इन चित्रों में हल्की गोलाई का आकृतियों में प्रयोग किया गया है, जिससे मानव आकृतियों का सौन्दर्य निखर आया है। अधिकांश चित्रों में पशु-पक्षियों, नदियों, वृक्षों, लताओं तथा पुष्पों का प्रयोग भी प्रेमियों के मनोवेगों के उद्दीपन हेतु किया गया है। आनंद कुमारस्वामी के शब्दों में—'यह शैली एक ऐसी कला है जिसमें भावना का पूर्ण त्याग भौतिक तथ्य के संसर्ग पर आधारित है।' (The complete avoidance of sentimentality is founded on the constant reference to the physical fact.) जिस प्रकार इन दोनों चित्रकारों की शैली के स्पष्ट उदाहरण कांगड़ा में प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्य कलाकारों की शैली के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। १७७० ई० में गुलेर शैली में स्त्रियों के चेहरे के चित्रण की तीन शैलियाँ प्रचलित थीं, जिनमें से दो समाप्त हो गईं और तीसरी शैली को कांगड़ा में उच्चस्तर प्राप्त हुआ। कांगड़ा शैली में स्त्रियों की मुद्राओं में भी विशेष अंतर आया। गुलेर शैली में बैठी हुई या खड़ी हुई नायिकाएँ बनायी गई थीं, परन्तु कांगड़ा की नायिकाएँ सुकोमल, सौन्दर्यपूर्ण, गतिवान, खड़ी मुद्रा में, लज्जा से लतिका के समान नत मस्तक अपने पटों को लहराती अंकित की गई हैं। आरम्भिक गुलेर शैली के कांगड़ा में प्रवेश करने के पश्चात् चित्रों में प्रतीकात्मक रंगों के प्रयोग और प्रचलित परम्परागत आकारों के स्थान पर यथार्थवादी प्रभाव अधिक आने लगा। स्त्री-आकारों की रचना में ज्यामितीय सिद्धान्त का अभी भी पालन होता रहा, परन्तु आकृतियों को अब

कोणोत्तर रूप प्रदान नहीं किया जाता था, बल्कि कोणदार आकारों का स्थान गोलाई युक्त रूप लेने लगे। भवन की उदग्र (खड़ी) रेखाएँ कुछ कठोर रखी जाती थीं जिससे आकृतियों के शरीर की कोमलता उभर गई है। शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत काव्य में प्रचलित पृष्ठभूमि का सहारा लिया जाता था और इस प्रकार के समस्त चित्रों के लिए कृष्ण सम्बन्धी वैष्णव सम्प्रदाय एक शक्तिशाली प्रेरणा बना हुआ था। वास्तव में राजा संसारचंद की वैष्णव धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा और वैष्णव-काव्य के कारण ही इन कलाकारों ने स्त्री-सौन्दर्य पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। कृष्ण को दिव्य-प्रेमी माना गया और शृंगारिक विषयों पर अधिकांश चित्र बनाये गए। कृष्ण का जीवन स्वतः ही प्रेमपूर्ण और शृंगारिक है, इस कारण कृष्ण के साथ कृष्ण की प्रिय और इच्छित वस्तुओं को प्रधानता प्राप्त हुई है। स्त्री-सौन्दर्य में कोमलता, मधुरता, यौवन, लज्जा तथा चंचलता की भावना दिखाई पड़ती है, जो कांगड़ा शैली के चित्रों का प्रिय और महत्त्वपूर्ण विषय बन गई है।

लगभग पच्चीस वर्ष तक राजा संसारचंद के दरबार में चित्रकारों को आदर्श संरक्षण और सर्वोत्तम प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, परन्तु १८०६ ई० में कांगड़ा पर संकट आया। नेपाल से गोरखा आक्रमणकारियों की घटा उमड़ी और इन आक्रमणकारियों ने कांगड़ा पर अधिकार जमा लिया और राजा संसारचंद को शताब्दियों से प्रसिद्ध अजेय कांगड़ा-दुर्ग में पराजय देखनी पड़ी। नेपालियों का यह घेरा लगभग तीन वर्ष तक चलता रहा और गोरखों ने चारों ओर मार-काट लूट-पाट और विध्वंस किया। राजा संसारचंद को १८०६ ई० में दुर्ग से निकलकर जंगलों की शरण लेनी पड़ी। इसी समय में राजा संसारचंद ने सिखों के राजा रणजीतसिंह से सैन्य सहायता प्राप्त कर ली और परिणामस्वरूप यह नेपाली घेरा उठ गया। यह घेरा तो १८११ ई० में उठ गया, परन्तु राजा की शक्ति समाप्त हो गई। कांगड़ा दुर्ग तथा राज्य सिक्खों के अधीन हो गया और राजा संसारचंद को महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में जाना पड़ा। इस दुखद परिस्थिति का कांगड़ा की कला पर गहरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि इसी समय में एक चित्रकार सजनूं ने कांगड़ा दरबार छोड़ दिया और उसने १८१० ई० में पड़ोसी राज्य मण्डी के शासक राजा ईश्वरी सेन को 'हमीरहठ' नामक राजपूत कथा पर आधारित एक चित्रावली भेंट की। निश्चित रूप से इस संकटकाल में कांगड़ा के चित्रकारों की कलात्मक क्षमता और शिल्प पर भी गहरा प्रभाव पड़ा होगा। वैसे इस समय तक (१८०६ ई०) राजा संसारचंद की आयु इकतालिस वर्ष की थी और इस कारण सम्भवतः उसके उत्साह और रुचि में अवश्य ही अंतर आ गया होगा। इस समय की राजनैतिक अव्यवस्था तथा राजा की चिंता और अशांति ने चित्रकला पर अत्यधिक प्रभाव डाला होगा अतः इस समय की कलाकृतियों में वह कोमलता और सौन्दर्य न रहा। कांगड़ा की चित्रकला के पतन का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि गोरखा युद्ध में कांगड़ा के उत्तम चित्रकार समाप्त हो गए हों, और यदि ऐसा न हुआ हो तो कदाचित वह अपनी वृद्धावस्था के कारण स्वयं ही मृत्यु

कमर में पेटी बनायी गई है जो मुगल परिधान के समान है। अनेक चित्रावलियों में कृष्ण को भी इसी मुगल वेशभूषा में बनाया गया है। वास्तव में पहाड़ी राजाओं का मुगल दरबार से सम्बन्ध होने के कारण ही यह परिधान पहाड़ी राज्यों में प्रचलित हो गया था। परन्तु फिर भी कृष्ण को अनेक चित्र-उदाहरणों में पीली धोती पहने और सिर पर मयूरपंख युक्त सोने का मुकुट धारण किये हुए भी पूर्णतया भारतीय लोक परिधान में चित्रित किया गया है। कृष्ण के गले में मोतियों की मालाएँ और भुजाओं में भुजबंद भी चित्रित किये गए हैं। ग्वाल-बाल तथा ग्रामीणजनों को प्रायः लंगोटी लगाये या छोटे जांघियों के समान वस्त्र पहने और सिर पर गोल टोपी लगाये अंकित किया गया है। (देखिए छाया फलक संख्या ८) कभी-कभी वर्षा के चित्रों में ग्रामीण तथा ग्वालों को काले कम्बल भी सिर से लटकाये बनाया गया है। कपड़ों में सुंदर आलेखन भी बनाये गए हैं, विशेष रूप से कपड़ों के किनारों पर सुनहरी-किनारी बनायी गई है। कांगड़ा शैली के चित्रों में कपड़ों की शिकनें, फहरन तथा मोड़ों को बहुत यथार्थता और कोमलता से बनाया गया है। स्त्रियों के लहंगों के नीचे के किनारे लहरदार बने हैं और यह लहर पलटकर एक के ऊपर एक चढ़ी हुई बनायी गई है।

पशु तथा पक्षी—कांगड़ा शैली के चित्र चाहे नायक-नायिका भेद पर आधारित हों या बारहमासा चित्रावली हो या राग-रागनी चित्र हों या कृष्ण जीवन से सम्बन्धित चित्र हों, सभी में चित्रकार ने पशु तथा पक्षियों को मानव-भावना के अनुकूल अंकित किया है। वर्षा में बगुला, विरह में सारस या मोर, विरह-रागनी चित्र में मृग (काला हिरन), नायिका को प्रेमी के आगमन का संदेश सुनाते हुए कौवे, बत्तखों के जोड़े बहुत सजीव, यथार्थपूर्ण तथा भावपूर्ण हैं। कृष्ण के साथ अधिकांश चित्रों में गायों का अंकन किया गया है। इन पशु-पक्षियों के चित्रण में मेवाड़ शैली जैसी चित्रण की निर्बलता नहीं है, बल्कि चित्रकार ने पशुओं को अनेक स्थितियों और आंगिक गतियों तथा शारीरिक रचनाओं में प्रस्तुत किया है। पैरों आदि के अंकन में चित्रकार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। पशुओं के चित्रण में सजीवता और गति सर्वत्र दिखाई पड़ती है। गायों को अनेक स्थितियों जैसे दौड़ते हुए, कृष्ण की मुरली की ध्वनि की ओर गरदन उठाये विमोहित होते हुए और विश्राम करते हुए आदि अनेक अवस्थाओं में चित्रित किया गया है। कांगड़ा शैली के चित्रों में गायें हरियाना जाति की हैं और इसी कारण गाय को हृष्ट-पुष्ट और विशालकाय (बड़ी काठी वाला) बनाया गया है। गाय के अतिरिक्त चित्रकार ने हाथी के चित्रण में भी अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है। पशु-चित्रण में सबसे बड़ी बात यह है कि चित्रकार ने पशुओं में भी मानव जैसी भावना फूंक दी है और इसी कारण मानव-शोक में पशु तथा पक्षी विषादपूर्ण और आनंद में उल्लासपूर्ण अंकित किये गए हैं। विरहणी के पास मोर की जोड़ी उद्दीपन ही नहीं वरन् संयोग का भी एक सुंदर उदाहरण बन जाती है।

वनस्पति तथा प्रकृति—कांगड़ा के चित्रो में प्रकृति के प्रति एक गहन प्रेम प्रदर्शित किया गया है। प्रायः चित्रों की पृष्ठभूमि को मनोरम प्राकृतिक दृश्यों से सजोया गया है। जिसमें व्यास नदी के क्षेत्र की भव्य वनस्पति और प्राकृतिक छटा विद्यमान है। पहले बताया जा चुका है कि विभिन्न ऋतुओं का अंकन इन दृश्यों में किया गया है, जिनमें अनेक पुष्पित वृक्ष, झाड़ियाँ तथा घास के शस्य-श्यामल मैदान अंकित किये गए हैं। अधिकांश वृक्षों में पत्तियाँ बनाने के लिए गहरी रेखा का प्रयोग किया गया है जिनमें मुगल पद्धति का अनुसरण है, तथापि कभी-कभी राजपूत-शैली के समान ही सफेद रंग के मिश्रण से बने हल्के रंग से गहरी पृष्ठभूमि के ऊपर पुष्प और पत्तियों को सुंदर आलेखनों की योजना में बद्ध किया गया है (देखिए छाया फलक सं० ६)। प्रायः पीपल, वट, बाँस, आम, जामुन, मंजनूं, केला, कचनार, अमलताश, गुलमोहर, शीशम, ढाक तथा पलाश आदि वृक्षों को बनाया गया है। प्रेमी और प्रेमिकाओं की संयोगावस्था में वृक्ष से लिपटी पुष्पित लतिकाओं को संयोग के प्रतीक स्वरूप अंकित किया गया है। तालाबों को कमल तथा कुमुद पुष्पों से युक्त अंकित किया गया है। नदी में जल का प्रवाह प्रदर्शित करने के लिए लहरदार या वक्रीय रेखाओं को बारीकी तथा कोमलता से बनाया गया है।

भवन—कांगड़ा शैली के चित्रों में भवनों का अंकन बहुत भव्य और कलापूर्ण है। विशेष रूप से भवनों की शैली अकबर और जहाँगीरकालीन मुगल भवन शैली है। भवनों को सफेद रंग से बनाया गया है जिनके स्तम्भ सुंदर आलेखनों से पूर्ण हैं। मीनारों पर प्रायः गुम्बद और छज्जों में जालियाँ बनायी गई हैं। बरामदों को मेहराबदार और सीधे घनाकार ठोस पत्थर की शिला (बीम) या लकड़ी के बीम के प्रयोग से बनाया गया है। दीवारों में प्रायः ताख या आले बनाये गए हैं। दरवाजों तथा बरामदों में लटकते हुए कामदार पर्दे और फर्श पर बिछे हुए सुंदर कालीन बनाये गए हैं।

रंग तथा परिप्रेक्ष्य—कांगड़ा शैली के चित्रों में दार्ष्टिक-परिप्रेक्ष्य नहीं है। चित्रकार ने अपने आलेखन और चित्रयोजना को कल्पना के आधार पर बनाया है और उसने परिप्रेक्ष्य के प्रयोग से इनकी विकृति नहीं होने दी है, परन्तु इस कमी को उसने चमकदार रंग और कोमल रेखांकन से पूरा कर दिया है। कांगड़ा के चित्रकार ने अमिश्रित रंग जैसे लाल, पीले तथा नीले रंगों का प्रयोग किया है,जो आज भी उसी प्रकार चमकदार बने हुए हैं। मिश्रित तथा हल्के रंगों में चित्रकार ने गुलाबी, बैंगनी, हरा फाखतई तथा हल्के नीले रंग का प्रयोग किया है। हल्के रंगों के अधिक प्रयोग से चित्रों में ओज और कोमलता की अत्यधिक वृद्धि हो गई है। भवनों के सफेद रंग में अधिकांश अभ्रकी सफेद रंग का प्रयोग किया गया है। स्त्रियों के परिधान में अल्जेरियन क्रैमजन का प्रयोग किया गया है जो अन्यत्र चित्रों में प्रयोग नहीं किया गया है। बहुत से अपूर्ण रेखाचित्र या चरबे चित्रकारों के संग्रह में नवीन चित्रों के निर्माण के लिए सुरक्षित रखे रहते थे। इन अपूर्ण चित्रों पर रंगों के नाम भी अंकित रहते थे। इस प्रकार के अनेक अपूर्ण चित्रों के उदाहरण प्राप्त हैं जिनसे चित्रों में प्रयुक्त रंगों के नाम ज्ञात हो सकते हैं।

रेखांकन—कांगड़ा शैली के चित्रों को भूरे सियालकोटी कागज पर बनाया गया है। चित्रकार ने भूरे सियालकोटी कागज पर हल्के लाल रंग से तूलिका के द्वारा पहले रेखांकन किया है। इन रेखाचित्रों को ऊपर से सफेद रंग से सपाट और पारदर्शी रूप से पोत दिया गया है। इस सफेद रंग के सपाट प्रयोग के पश्चात् कागज को घोटकर चिकना कर लिया जाता था और तब पुनः चित्र की सीमा रेखाओं को भूरे या काले रंग से उभार दिया जाता था। तत्पश्चात् पृष्ठभूमि और आकृतियों में रंग डाल दिये जाते थे। इन रंगों के पश्चात् पुनः रेखाओं को उभार दिया जाता था। प्रायः उस्ताद या गुरु चित्रकार के रेखांकन कर देने के पश्चात् अभ्यासी चित्रकार (शिष्य) या साधारण चित्रकार भी चित्र में रंग लगा देते थे।

रेखा—कांगड़ा शैली के चित्रों की शैली की प्रमुख विशेषता रेखा की कोमलता, रंगों की चमक तथा आलंकारिक विवरणों की सूक्ष्मता है। अजन्ता की कला के समान कांगड़ा की कला भी विशेष रूप से रेखा की कला है। आनंद कुमारस्वामी ने कांगड़ा शैली में शक्तिशाली वक्रीय सीमारेखा को चित्र की भाषा का आधार माना है। वास्तव में रेखा की कोमलता प्राप्त करने के लिए कलाकार ने गिलहरी के बालों की बनी तूलिका का प्रयोग किया है। ये तूलिकाएँ बकरी तथा नेवले के बालों से भी बनायी जाती थीं।

छन्द—कांगड़ा शैली के चित्रकार का प्रधान विषय प्रेम है और प्रेम के विभिन्न भावों का इस शैली में छन्दमय, काव्यमय और चित्रात्मक रूप से अंकन किया गया है। चित्रण की कोमलता से चित्रों में और भी अधिक रोचकता आ गई है। आनन्द कुमारस्वामी के शब्दों में—"चीनी कला ने दृश्य चित्रण में छन्द की जो उपलब्धियाँ की है वह यहाँ पर मानव प्रेम में है।"

सोने तथा चाँदी के रंग—कांगड़ा शैली के चित्रों में सोने और चाँदी के रंगों के प्रयोग से चित्र में अधिक ओज बढ़ गया है। आभूषणों, कपड़ों के किनारे, वस्त्रों की बेल-बूटियाँ, भवन का साज-सामान जैसे हुक्का, गडुआ, सिल्फची, तश्तरियाँ और गुलाबपाश (गुलाब जल छिड़कने का पात्र) आदि सोने के रंग से बनाये गए है और प्रकोष्ठों के आलों या फर्श पर यह साज-सामान संजोया गया है। कभी-कभी चाँदनी रात्रि या दामिनी के प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए सोने या चाँदी के रंग का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार जल का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भी चाँदी के रंग की पृष्ठभूमि तैयार की गई है। अनेक चित्रों में रात्रि का प्रकाश चाँदी के रंग से दिखाया गया है। रात्रि दृश्यों में चित्रकार ने दो प्रकार के प्रकाश—जैसे चाँदनी और अग्नि के प्रकाश को बड़ी सफलता से दिखाया है।

वाद्य यंत्र—कांगड़ा के चित्रों में कृष्ण की बाँसुरी के अतिरिक्त तम्बूर, ढोलक, मृदंग, मंजीरा, वीणा तथा सितार आदि अनेक वाद्य यंत्र बनाये गए है।

मानव आत्मा—कांगड़ा के इन शृंगारिक चित्रों में भावना की अत्यधिक तीव्रता है। हिमालय की तराई के बीहड़ भयानक जंगलों में निरंतर युद्ध के कारण ही नहीं बल्कि भयानक पशु और विषाक्त जीवों के कारण भी जीवन संकटमय और भयपूर्ण था और सदैव

101

८

आधुनिक-काल की चित्रकला

(स्वतंत्रता-पूर्व, स्वतंत्रता-पश्चात् के चित्र, नूतन प्रवृत्तियाँ
(१८०० ई० से आज तक)

दिल्ली तथा लखनऊ की चित्रण शैलियाँ—१७६० ई० में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही उत्तरी भारत की चित्रकला में सर्वत्र अवनति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। दिल्ली तथा लखनऊ में कुछ चित्रकार अभी भी चित्रकला का व्यवसाय चलाये हुए थे परन्तु इनकी कृतियाँ प्राचीन कृतियों की हेय अनुकृतियाँ थीं। दिल्ली के चित्रकारों ने शीघ्र ही लघु शबीह चित्रों का अंकन प्रारम्भ कर दिया और यह शैली उस समय अधिक प्रचलित हो गई। कुछ मुस्लिम चित्रकारों के परिवार इस प्रकार के शबीह चित्रों का निर्माण करते रहे। इन चित्रकारों ने विशेष रूप से मुगल सम्राटों की शबीहों का अंकन किया। इन चित्रों में अलंकरण योजना और चित्र में अंकित व्यक्ति का सादृश्य निम्न कोटि का था। ये चित्रकार मुगल शैली के चित्रकारों के वंशज थे और अभी इनके रेखांकन में मुगल कला की कुछ विशेषताएँ विद्यमान थीं। इन चित्रकारों ने प्राचीन ढंग की सामग्री का चित्र निर्माण में प्रयोग किया और उन्होंने मध्यकालीन ढंग के कागज़ तथा रंगों का अधिक प्रयोग किया। यह चित्र प्रायः बड़े-बड़े घरानों में स्त्रियाँ ले जाकर बेचा करती थीं और इस प्रकार चित्रकार बाजारू ढंग से काम करने लगे। इन शबीह चित्रों पर गलत नाम भी लिख दिये जाते थे जिससे कि वे सुगमता से बिक जाएँ। इसी समय दिल्ली में हाथी दाँत पर कुछ शबीह चित्र बनाये गए जो कारीगरी तथा भावना में उत्तम हैं। इस प्रकार दिल्ली कलम दम तोड़ने लगी और चित्रकार दूसरे कामों में लगने लगे।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लखनऊ में एक भिन्न प्रकार की चित्रण शैली प्रचलित हो गई जो रूमी-कलम के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्कूल ने प्राचीन कला-शैली की कुछ उत्तम विशेषताओं का प्रतिपादन किया परन्तु इस

को प्राप्त हो गए हों। कम से कम दो महान चित्रकार, जो कांगड़ा में १७७० ई० में आये थे लगभग अपनी दस या बीस वर्ष की सेवाएँ प्रदान करके मृत्यु को प्राप्त हो गए हों। यह सम्भव है कि हरिद्वार के सरदार रामरखा पंडित की बही से नैनसुख की अस्थियों के प्रवाह की तिथि १७७८ ई० प्रमाणित है। इस प्रकार १८०६ ई० के पश्चात् कांगड़ा की कला की विशेषताएँ लुप्त होने लगीं यद्यपि अनेक चित्रकार चित्रकृतियाँ बनाते रहे परन्तु उनकी रेखा में निर्जीवता तथा रंग और आकृतियों में भद्दापन तथा विकृति आने लगी।

कांगड़ा शैली का पतन—१८२३ ई० में राजा संसारचंद की मृत्यु से कांगड़ा कला की उत्साहपूर्ण धारा मंद ही नहीं पड़ गई बल्कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। राजा की मृत्यु के छः वर्ष पश्चात् उसका उत्तराधिकारी राजा अनिरुद्धचंद गद्दी पर बैठा परन्तु उसको कांगड़ा छोड़कर सतलज पार कर अंग्रेजी राज्य में टेहरी गढ़वाल भागना पड़ा, क्योंकि रणजीतसिंह उसकी दो बहनों का जम्मू के राजा ध्यानचंद से विवाह कराना चाहता था। एक अंग्रेज यात्री विजने (Vigne) ने लिखा है कि—"राजा अनिरुद्धचंद ने अपनी समस्त बहुमूल्य वस्तुएँ सतलज की ओर भेज दीं।" यद्यपि उसने चित्रों के विषय में नहीं लिखा है परन्तु यह सोचना संगत है कि उसकी इन बहुमूल्य निधियों में चित्र-संग्रह भी थे। राजा ने अपनी बहनों का विवाह गढ़वाल के राजा सुदर्शनशाह (१८१५-५६ ई०) से कर दिया और इस प्रकार कांगड़ा शैली के बहुत से चित्र जो कांगड़ा से राजा साथ ले आया था, राजा ने दहेज के रूप में सुदर्शनशाह को भेंट कर दिए। इस प्रकार कांगड़ा के उत्तम चित्र-संग्रह टेहरी गढ़वाल में पहुँच गए। अनुमान किया जाता है कि इसी समय राजा के साथ अनेक कलाकार हरिद्वार तथा गढ़वाल आये और टेहरी में बस गए। इसी कारण गढ़वाल में बने १८३० ई० से १८६० ई० के मध्य के चित्रों में कांगड़ा शैली का पूर्ण रिक्थ विद्यमान है। अपनी बहनों का विवाह गढ़वाल के राजा के साथ करके कुछ समय अनिरुद्धचंद कनखल (हरिद्वार) में महल बनवाकर तीर्थाटन की दृष्टि से रहा। उसका यह महल चित्रित था। जिसके आज भग्नावशेष मात्र रह गए हैं। विवाह के पश्चात् वह स्थायी रूप से शिमला के निकट अर्की में रहने लगा जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। अर्की भी इस प्रकार कांगड़ा शैली का केन्द्र बन गया। उसके दो पुत्रों रणवीरचंद और प्रबुद्धचंद को १८३३ ई० में ब्रिटिश सरकार ने ५०,००० रुपये की जागीर अनुदान में दे दी।

अनिरुद्धचंद के कांगड़ा से भागने के पश्चात् कांगड़ा में बहुत अशांति रही। पहले सिक्ख शासकों के समय में कांगड़ा में अशांतिपूर्ण वातावरण रहा फिर राजा जोधवीरचंद के समय में यही स्थिति चलती रही और १८४६ ई० में सिक्खों की पराजय के पश्चात् कांगड़ा में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो गया परन्तु चित्रकार चित्रों का न्यूनाधिक निर्माण करते रहे। १८०५ ई० में कांगड़ा में भूकम्प आया जससे कलाकारों के जीवन और कलाकृतियों दोनों को हानि पहुँची और इस प्रकार कांगड़ा कला समाप्त हो गई। १८५८ ई० की कांगड़ा शैली की एक चित्रमाला ब्रिटिश संग्रह में प्राप्त है। इस चित्रमाला के चित्रों में भद्दे रंग हैं और चित्रों में कठोरता है। कांगड़ा शैली

के चित्रों में इस प्रकार निर्बलता और निर्जीवता आ गई। १६२६ ई० में जब श्री जे० सी० फ्रेंच ने कांगड़ा का भ्रमण किया तो उन्होंने कांगड़ा के चार चित्रकारों—१. नंदू, २. हज़ारी, ३. गुलाबराम तथा ४. लक्ष्मन को चित्रकारी का व्यवसाय करते हुए पाया था।[५] कांगड़ा शैली के चित्रकारों की संतति अब चित्र निर्माण नहीं करती परन्तु अभी भी कुछ ऐसे परिवार है जिनके पास चरबों तथा चित्रों का संग्रह है और समय-समय पर वह व्यावसायिक चित्रकारी आदि का कार्य करते रहते है। यह चित्रकार चरबों की सहायता से चित्र रचना भी कर लेते है परन्तु ऐसे चित्रकार भी एक या दो ही हैं।

सिक्खों के उदय के साथ ही सिक्खों के दरबारों में भी चित्रकार नियुक्त किये गए और बहुत से कांगड़ा शैली के चित्रकार सिक्ख दृष्टिकोण को अपनाकर चित्र बनाने लगे और १८१० ई० से कांगड़ा-शैली का एक भिन्न रूप सिक्ख चित्रों में दिखाई पड़ने लगा।

कांगड़ा के चित्रकार—कुछ वर्ष पूर्व समलोटी ग्राम जिला कांगड़ा के एक चित्रकार गुलाबराम (गुलाबू) ने अपने पूर्वजों की प्राचीन वंशावली प्रस्तुत की है। उसके पूर्वज राजा संसारचंद के दरबार में चित्रकारी करते थे। उसके पड़दादा धूमन की वंशावली आगे प्रस्तुत की जा रही है।

पुरखू के पिता धूमन को गुलेर का मूल निवासी बताया जाता है। जो कालान्तर में गुलेर छोड़कर कांगड़ा के समलोटी गांव में जाकर बस गया था।

कांगड़ा के चित्रकारों में फत्तू, कुशनलाल या कुशला के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। उपरोक्त दो कलाकारों के अतिरिक्त कांगड़ा के अन्य कलाकारों की हस्ताक्षर सहित कोई भी कृति प्राप्त नहीं हुई है। कांगड़ा के दो चित्रकारों वसिया और धूमन के पुत्र पुरखू का इतिहासकारों ने उल्लेख दिया है। राजा संसारचंद के दरबार में आश्रित वसिया चित्रकार के प्रपौत्र लक्ष्मणदास से फ्रेंच महोदय ने समलोटी में भेंट की थी। इनके अतिरिक्त पदनू और दोखू को भी कांगड़ा के राजा संसारचंद के दरबार का चित्रकार बताया जाता है।

(धूमन की वंशावली)

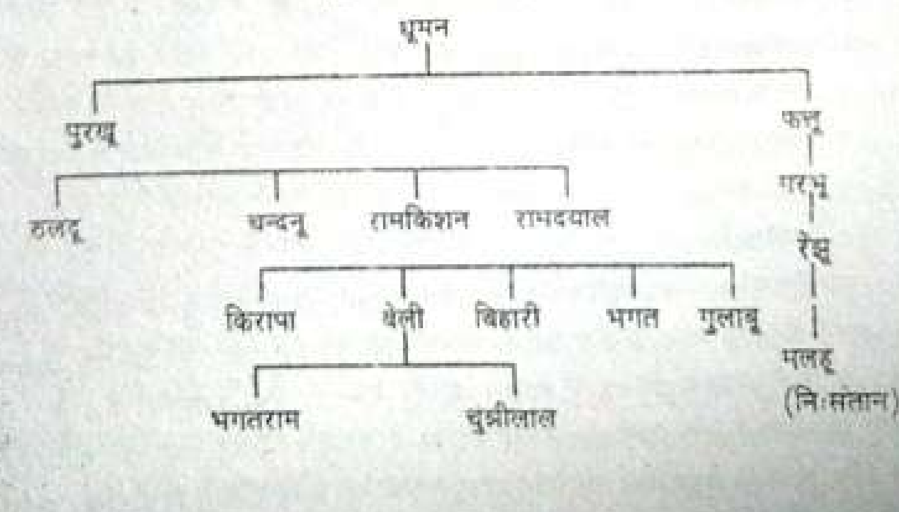

इसी प्रकार कश्मीर के पण्डित शिव (शिवराम) चित्रकार का परिवार भी गुलेर होता हुआ कांगड़ा पहुँचा। कांगड़ा में नैनसुख तथा उसके परिवार के चित्रकारों का विशेष योगदान है जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

कांगड़ा शैली के चित्रों का विषय—कांगड़ा के राजा संसारचंद की वैष्णव सम्प्रदाय की ओर विशेष रुचि होने के कारण भक्ति-काव्य और रीति-काव्य की धारा को दरबारी संरक्षण प्राप्त हुआ है।

धार्मिक चित्र—कृष्ण के प्रेम और शृंगार की भावना कलाकारों के लिए एक मुख्य प्रेरणा थी। कृष्ण को प्रतीक मानकर नाना सांसारिक तथा शृंगारिक लीलाओं को अंकित किया गया। अधिकांश धार्मिक महाकाव्यों पर आधारित प्रेम-कथाओं को चित्रों में प्रधानतः चित्रित किया गया—जिसमें रामायण, महाभारत, हमीरहठ, नलदमयन्ती, शिव तथा पार्वती की पौराणिक कथाओं को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। इन महाकाव्यों को एक नवीन चित्रमय जीवन प्राप्त हुआ और बिहारी तथा महाकवि केशवदास की रचनाओं को भी चित्रबद्ध किया गया।

नायिका भेद—जिस प्रकार मध्यकालीन काव्य में शृंगार की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्ति का विवेचन किया गया है उसी प्रकार कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने शृंगार की मनोरंजक और भावपूर्ण दशा की सजीव चित्रमय झांकियाँ प्रस्तुत की हैं। कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने तीनों प्रकार की नायिकाओं—(१) स्वकीया (स्वयं की), (२) परकीय (दूसरे की) तथा (३) सामान्य (किसी की भी) का अंकन किया है। इन नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ (अष्ठ नायिकाएँ) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं (नायिका के ये आठों रूप कांगड़ा शैली के चित्रों में उपलब्ध हैं)

१. स्वाधीनपतिका।
२. उत्का या उत्कंठिता (या विरहोत्कण्ठिता)*।
३. वासकसज्जा या वासक सज्जा।
४. अभिसन्धिता (या कलहान्तरिता)*।
५. खण्डिता।
६. प्रेषितापतिका या प्रेषिता प्रेयसी।
७. विप्र-लब्धा।
८. अभिसारिका।

स्वाधीनपतिका—यह नायिका है जिसे उसका योग्य स्वामी प्रेम करता है और उससे प्रेम करने के लिए बाध्य है और उसका जीवन-साथी है। इस प्रकार की नायिका कांगड़ा शैली के चित्रों में राधा के रूप में अंकित की गई है अनेक चित्र उदाहरणों में राधा एक चौकी पर बैठी है और कृष्ण उसके पैर धो रहे है या कुंज में बैठे राधा की चोटी गूंथ रहे हैं या राधा के चरण दबा रहे हैं या महावर लगा रहे हैं। इन चित्रों में राधा को आत्म-अभिमान और आत्मविश्वास से पूर्ण दिखाया गया है।

उत्का—वह नायिका है जिसके प्रेमी ने निमंत्रण के निश्चित समय पर न आकर अपने विश्वास को खोया है। ऐसी नायिकाओं को नदी के किनारे, वृक्ष के नीचे, धरती पर पत्तों के ऊपर चमेली के पुष्पों की बिछी सेज (चादर) पर खड़ा या बैठा अंकित किया गया है। वृक्ष पर एक पक्षियों के जोड़े को बैठा बनाया गया है। आकाश के काले बादलों की घुमड़ और चंचल-चपला में नायिका उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रही है। कभी-कभी मृग भी जल पीते या विचरण करते साथ में बनाये गए हैं।

वासकसज्जा—वह नायिका है जो अपने प्रेमी या स्वामी के आगमन की बाट द्वार की सीढ़ियों पर जोहती है। उसका सफेद चंदन के समान शरीर दीपक के समान जलता है और उसके नीले वस्त्र कल्पलता के समान कोमल शरीर के चारों ओर फहराते हैं। वह धीरे बोलकर अपनी व्यथा व्यक्त करती है जैसे कि वह अपना जादू चला रही हो। यह नायिका कांगड़ा के चित्रों में अपने शयनकक्ष के द्वार पर प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में उत्सुक, आशा लगाए खड़ी हुई अंकित की गई है। घर में नायक के स्वागत हेतु तैयारी की जा रही है, प्रेमी एक सुंदर नौका में नदी के दूसरी ओर एक सारस के जोड़े के पास बैठा दिखाया जाता है।

अभिसन्धिता—वह नायिका है जो अपने प्रियतम के प्रेम पर विश्वास नहीं करती परन्तु प्रेमी के विरह या उसकी अनुपस्थिति में दुखी रहती है। इस प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण के लिए कृष्ण और राधिका का झगड़ा लिया गया है। कृष्ण राधा के क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं, राधा और अधिक क्रोधित होती हैं, परन्तु जब कृष्ण लौटकर जाने लगते हैं तो राधा आवेश में कहे अपने शब्दों पर दुखी होती है।

खण्डिता—वह नायिका है जिसका प्रेमी रात्रि को निश्चित समय निमंत्रण पर पहुँचने में असफल रहता है और रात्रि को किसी दूसरी युवती के साथ सहवास करके दूसरे प्रातः आता है और नायिका उसके नेत्रों की लाली देखकर अन्य युवती के साथ उसकी रात्रि-सहवास को सिद्ध कर देती है।

प्रेषित-पतिका—वह नायिका है जिसका पति सदैव समय-समय पर व्यापार ग्रस्त रहता है। गुलेर-शैली के एक चित्र में यह नायिका इस प्रकार दिखायी गई है—आकाश में बादल, सारस और बगुले देखकर उत्सुक नायिका छज्जे पर आती है। इस चित्र में प्रेमी की अनुपस्थिति का प्रतीक एक मोर भी अंकित है और वर्षा आरम्भ होने वाली है। अतः नायिका विह्वल होकर सर ऊपर उठाए भगवान से अपने प्रियतम के सकुशल लौट आने की प्रार्थना करती चित्रित की गई है।

विप्रलब्धा—वह नायिका है जो व्यर्थ ही रात्रिभर अपने प्रेमी के आगमन की प्रतीक्षा करती है। इस नायिका को एक वृक्ष के नीचे पत्तियों की सेज के एक कोने पर अंकित किया जाता है। यह दुखी होकर आवेश में अपने आभूषण आदि उतारकर पृथ्वी पर फेंक रही है। पृष्ठभूमि में रिक्त स्थान उसके एकाकीपन तथा दुख का सूचक होता है।

अभिसारिका—यह नायिका है जो अपने प्रेमी से मिलने के लिए रात्रि में बाहर जाती है। यह नायिका कांगड़ा के चित्रकार का प्रिय विषय रही है। कृष्ण अभिसारिका और शुक्ल अभिसारिका कांगड़ा शैली के चित्रों में क्रमशः अंधेरी रात्रि और चाँदनी रात्रि में प्रेमी से मिलने के लिए जाती हुई अंकित की गई है। कांगड़ा शैली के चित्रों में कृष्ण अभिसारिका नीला-आँचल डाले अपने प्रेमी को ढूंढने जा रही है, अंधेरी रात्रि में काले बादलों में दामिनी चमक रही है। जंगल में सर्प और चुड़ैल है परन्तु ऐसे भयानक वातावरण में भी निर्भीक नायिका (आत्मा), अपने प्रेम की तृप्ति के लिए प्रेमी (परमात्मा) को खोजने निकलती है।

प्रेम की अवस्थाएँ—प्रेमियों की विभिन्न स्थितियों के अनुसार प्रेम के दो पक्ष है जिनमें प्रथम पक्ष वियोग और द्वितीय पक्ष संयोग है। वियोग पक्ष के तीन प्रकार माने गए है—प्रथम पूर्वराग अर्थात् प्रेम का आरम्भ, द्वितीय मान अर्थात् प्रेमियो के मिथ्या अभिमान से उत्पन्न वियोग, तृतीय प्रवास अर्थात् प्रेमी के विदेश गमन से उत्पन्न विरह या वियोग। कांगड़ा शैली के चित्रों में विरह की ये तीनो दशाएँ चित्रकार का मार्मिक विषय बन गई है। पूर्वराग का एक सुंदर चित्र उदाहरण मिर्ज़ा साहिबान पर आधारित चित्र है, जिसमें एक प्यासा राजकुमार एक गाँव के कुएं पर पहुँचता है और एक युवती उसको पानी पिलाती है। जब राजकुमार अपनी अंजुल से पानी पीता है तो उसके नेत्र युवती के मुख पर लगे रहते हैं। इसी प्रकार राधा और कृष्ण के चित्र-उदाहरण प्राप्त है जिसमें राधा या तो रसोई में काम कर रही है या बाल गूंथ रही है या स्नान कर रही है और कृष्ण उसको एक छज्जे (दीर्घा) से देख रहे हैं।

भाव—प्रेमियों की संयोग-अवस्था में उत्पन्न बाह्य भावों को कायिक भाव या हाव कहा जाता है। हाव बारह प्रकार के माने जाते हैं। प्रेम में लीन प्रेमियों के आलिंगन और चुम्बन से उत्पन्न आनंद की अवस्था को 'लीला हाव' कहा जाता है। 'विलास-हाव' में प्रेम आनंद में लीन प्रेमियों के अंग फड़कते हैं और नायिका के नेत्र आनंद से चमकते हैं। जब नायक की भव्य-वेशभूषा और अलंकरण के प्रति नायिका में आकर्षण दिखाई पड़ता है तो उसको 'ललित हाव' कहा जाता है। जब नायिका अपने सौन्दर्य से निश्चिंत हो स्वल्प अलंकरण और साधारण वस्त्र पहनती है तो 'वैचित्र-हाव' कहा जाता है। जब नायिका प्रेमी के आगमन से प्रेम प्रफुल्लित होकर गलत स्थानों पर आभूषण धारण कर लेती है तो उसको 'विवहर्या-भाव' कहते हैं। कभी-कभी जब क्रोध, आनंद तथा भय के भाव एक साथ नायिका में जाग्रत होते हैं और आनंद मूर्छा होती है तो 'किलकिन्चित हाव' कहते हैं। कभी-कभी नायिका अपने प्रेमी की बात में अपनी प्रशंसा सुनकर जम्हाई या अंगड़ाई लेती है तो यह प्रेम की अभिव्यक्ति 'मोत्राइत्या-हाव' कहलाती है। जब नायिका प्रेमी के आगमन में अरुचि या बहाना दिखाती है और क्रोध और आवेश भरे शब्दों का प्रयोग करती हुई भी हृदय में प्रेमी के प्रति प्रेम भर रखती है तो यह भावों का दिखावा 'विबोक-हाव' कहलाता है। जब नायिका प्रेम के उन्माद में आकर अपनी सौम्यता भूल जाती है तो उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती इच्छा 'हेल-हाव' कहलाती है। जब नायक नायिका के लिए अपने भाव किसी चिन्ह से व्यक्त करता है तो 'बोध-हाव

कहलाता है जैसे यदि प्रेमी प्रेमिका को अपने दुखी या मुरझाये हृदय की अवस्था को दिखाने के लिए मुरझाया कमल-पुष्प भेट करता है।

रस परिपाक के लिए कांगड़ा के चित्रकार ने विभाव के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों पक्षों का सहारा लिया है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति उद्दीपन से होती है। आकर्षक उद्दीपनों में चाँदनी, बादल, पुष्प-सुगंध (सौरभ), लाल तथा पीले रंग, संगीत, कोयल की कूक, पपीहे का स्वर, मधुमक्खियों का गुंजन आदि है जिससे आनंद उत्पन्न होता है। मुद्रा या गति एक ऐसी हिलोर उत्पन्न करती है जिसे अनुभाव कहते हैं, इनमें शरीर की लचक, भृकुटियों के भाव के साथ कटाक्ष प्रमुख है।

गुलेर तथा कांगड़ा शैली के चित्रों में संयोग की विभिन्न स्थितियों को सुंदरता से चित्रित किया गया है। गुलेर शैली के एक चित्र में चाँदनी रात में कचनार के पुष्पित वृक्ष तथा केले के पीछे आधा चाँद निकला हुआ है और राजा दीवार पर बैठा हुआ रानी को ऊपर चढ़ा रहा है। रानी बैठी हुई दासी या दूती के सिर पर पैर रखकर ऊपर चढ़ रही है और छज्जे पर दूसरी रानी अर्द्धनग्न अपने बिस्तर पर बैठी है। भवन के दूसरे खण्ड में सेविका राजा का बिस्तर लगा रही है। इसी प्रकार अन्य चित्रों में राजा-रानी बाग में तकिये के सहारे बैठे आराम करते, मधुपान करते, केलि क्रीड़ा करते आदि संयोग की विभिन्न स्थितियों में दिखाये गए हैं। अन्तःपुर की झाँकियाँ कांगड़ा चित्रों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

बारहमासा—नायिका भेद के अतिरिक्त चित्रकार ने 'बारहमासा' का अंकन सूक्ष्म दृष्टि से किया है। इसी प्रकार षड्ऋतुओं की पृष्ठभूमि में नायिकाओं का भावोद्दीपन अधिक सरस, सुलभ और सजीव हो गया है। कलाकार की दृष्टि उल्लासपूर्ण फाल्गुन तथा चैत्र मास की पुष्पित तथा पल्लवित प्रकृति की वसंत शोभा में केन्द्रित हो गई है। कचनार, सेमल, टेसू, ढाक, शीशम तथा पलाश आदि के पुष्पित वृक्षों, सरसों के खेत, मंजरी से लदे रसाल (आम) वृक्ष, आदि चित्रकार ने बड़ी सुंदरता से अपने चित्रों में अंकित किए हैं। इसी वसंत ऋतु में प्रेमियों की क्रीड़ा के लिए होली उत्सव भी आता है। अनेक चित्रों में होली के उत्सव का अंकन किया गया है जिसमें अधिकांश ग्वाल-बालाओं को कृष्ण के ऊपर टेसू के रंग की वर्षा करते दिखाया गया है, साथ ही अबीर और गुलाल की वर्षा से गुलाबी बादलों से वातावरण आच्छादित है।

वसंत के पश्चात् वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास के अन्तर्गत ग्रीष्म-ऋतु आती है। इस ऋतु में गुलमोहर के वृक्ष पुष्पित होते हैं और उनमें लाल रंग प्रस्फुटित होता है। ताप के कारण गजराज (हाथी) तालाबों पर जल पीने के लिए निकल पड़ते हैं और तालाबों में अनेक जल-क्रीड़ाएँ करते हैं। ग्रीष्म के तापमान के कारण सिंह अपनी कंदराओं में चले जाते हैं और सर्प आदि बिवरों से बाहर निकल आते हैं। इस समय नायिका वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने प्रेमी से प्रेमवार्ता करती है और इस संयोग अवस्था की नायिका के नीले वस्त्र पीले पुष्पों से आच्छादित अमलताश वृक्षों से विरोधी रंग स्थापित कर लेते हैं।

श्रावण तथा भाद्रपद (भादों) मास में वर्षा ऋतु की अनुपम प्राकृतिक छटा चित्रों में दृष्टिगोचर होती है। श्याम घनों की घनघोर गर्जना, चपला की चमक तथा कृष्ण पक्ष की अंधकारपूर्ण रात्रि भयानक बन जाती है। विरहणी नायिकाएँ अपने प्रियतम के वियोग में तड़पती हैं परन्तु वही वर्षा प्रेमियों की संयोगावस्था में एक आनंद बन जाती है। काले-काले बादलों में बगुलों की धवल पंक्तियाँ उड़ती दिखाई पड़ती हैं।

शरद ऋतु में आश्विन (क्वांर) तथा कार्तिक मासों में ठण्डक हो जाती है तथा आकाश स्वच्छ हो जाता है। कार्तिक की रात्रि अपनी चाँदनी रात के लिए प्रसिद्ध है, इसी समय में नायिकाएँ अपने प्रियतम की खोज में बाहर निकलती हैं। इस ऋतु में सूर्यास्त का समय सुंदर होता है और आकाश संध्या के समय स्वर्णिम लालिमा से जगमगा उठता है।

हेमंत ऋतु का आगमन अग्रहायण (मागसर) मास में होता है। इस समय में ठण्डक बढ़ जाती है। शिशिर ऋतु पौष तथा माघ में होती है। इस समय में शीत की अधिकता हो जाती है, खेतों में पाला पड़ने लगता है। इस ऋतु में हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर हिमपात आरम्भ हो जाता है। इन छः ऋतुओं को मुख्य रूप से चार भागों--वसंत, ग्रीष्म, पतझड़ तथा शरद में बाँटा जा सकता है और इन चार भागों को तापमान के अनुसार दिन के चार प्रहरों--प्रातः, दोपहर, सूर्यास्त तथा रात्रि से तुलना की जा सकती है। कांगड़ा शैली के चित्रों में षडऋतु या बारहमासा पर आधारित चित्रों के अनेक सुंदर उदाहरण उपलब्ध हैं।

राग-रागनी चित्र--कांगड़ा शैली के चित्रकारों का विषय-क्षेत्र व्यापक है। नायक-नायिका भेद या बारहमासा ही चित्रकार की सीमा नहीं थे, बल्कि चित्रकार ने राग-रागनियों पर भी चित्र बनाये हैं। इस प्रकार के चित्र आज बहुत कम प्राप्त हैं। कांगड़ा शैली के चित्रों में 'विरह रागनी' तथा 'वसंत-राग' के चित्र सुंदर हैं।

दरबारी तथा व्यक्ति चित्र--कांगड़ा का चित्रकार राजदरबार का एक सदस्य था अतः उसके चित्रों का प्रधान विषय दरबार के दृश्य तथा दरबारियों के व्यक्ति चित्र होना अनिवार्य था। इस प्रकार के दरबारी चित्रों में राजा संसारचंद के सुंदर चित्र प्राप्त हैं जिनमें राजा को चाँदनी रात्रि में गवैयों का गाना सुनते या दरबारियों के साथ बैठा दिखाया गया है। इन चित्रों के अतिरिक्त अनेक व्यक्ति चित्र और मुखाकृति चित्र भी बनाये गए।

यद्यपि चित्रकार का कांगड़ा राजदरबार से सम्बन्ध था परन्तु फिर भी उसकी सरल दृष्टि सामाजिक जीवन और जनसाधारण के जीवन की ओर से न हटी। चित्रकार ने विभिन्न उत्सवों जैसे होली, गोवर्धन पूजा इत्यादि पर अनेकों चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन चित्रों में चित्रकार ने लोक-भावना और सामाजिक जीवन का एक जीता-जागता रूप प्रस्तुत किया है। चित्रकार ने लोक जीवन को कृष्ण के सामान्य लोक जीवन की ओट में प्रस्तुत किया है। कृष्ण का जीवन कृषक तथा ग्वालों के जीवन से सम्बद्ध है और इसी प्रकार चित्रकार ने साधारण लोक जीवन को कृष्ण की जीवन लीलाओं के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार लोकपक्ष की झाँकियाँ बहुत ही सरस और कोमल अभिव्यंजना बन गई हैं।

कांगड़ा शैली के चित्रों की विशेषताएँ

कांगड़ा शैली के चित्र लघु आकार के बनाये गए हैं। इन चित्रों की योजना, सपुञ्जन, भावात्मकता, सुंदरता, सरसता, कोमलता, छन्द और गति दर्शक को एक साथ ही मंत्रमुग्ध कर लेती है। चित्रों की बारीक कारीगरी, स्वच्छता और मीने के समान चमकदार रंग तथा आकृतियों की गोलाई और डौल इस शैली को भारतवर्ष की सर्वोत्कृष्ट लघु चित्र-शैली के स्तर पर पहुँचा देती है। ये चित्र छोटे आकार में बने हैं और कागज़ पर बनाये गए हैं।

कागज़ तथा हाशिया—सियालकोटी कागज़ की अनेक तह चिपकाकर कागज़ को मोटा और चित्रण के लिए उपयुक्त बना लिया गया है। कभी-कभी चित्रों के चारों ओर पतला हाशिया बनाया गया है, जिसमें सरल आलेखन भी बनाये गए हैं। कुछ चित्र उदाहरणों में बसोहली शैली के समान लाल पट्टियों का भी हाशिये के रूप में प्रयोग किया गया है, फिर भी अधिकांश चित्रों में पतले हाशिये बनाये गए हैं।

रूप तथा आकार—कांगड़ा शैली के चित्रों में वक्रीय आकारों को अपनाया गया है और स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही अंगों में यथोचित गोलाई तथा सुडौलता है। स्त्रियों के चेहरे, अंग-भंगिमाओं तथा हस्त-मुद्राओं के बनाने में चित्रकार ने कमाल कर दिया है। यौवन तथा लज्जा से पूर्ण नारी का गुलाबी चेहरा और उसके स्वस्थ अंग कलाकार ने स्मृति, कल्पना तथा नियमों की जकड़ के रहते हुए भी यथार्थ ढंग से अंकित किये हैं। प्रायः मानवाकृतियों के नेत्रों को कमलाकार बनाया गया है और चिबुक गोल, पतले, गुलाबी अधर तथा लम्बी-सीधी नासिका बनायी गई है। चेहरे में गोलाई लाने के लिए गरदन के पास तथा आँख के पास सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। कांगड़ा के चित्रकारों ने नेत्रों को भावपूर्ण और उल्लासपूर्ण बनाया है जिससे जीवन की सजीवता परिलक्षित होती है। स्त्रियों के सुकोमल, लहराते हुए श्याम केश कन्धों पर नागिन के समान लहराते पारदर्शी दुपट्टों में चमकते हुए दिखाये गए हैं। अधिकांश चित्रों के चेहरों को एकचश्म बनाया गया है तथापि डेढ़ चश्म चेहरों का प्रयोग भी किया गया है परन्तु उनमें रेखांकन की कुशलता और परिमार्जन नहीं है।

वस्त्र तथा आभूषण—कांगड़ा शैली के चित्रों में स्त्रियों को लहंगा, कांचुकी (जिसमें कोहनी तक आस्तीनें हैं और सम्मुख भाग दो तनियों से बंधा है जिससे कुछ भाग खुला रहता है) पहने तथा पारदर्शी दुपट्टा या रेशमी आँचल ओढ़े हुए बनाया गया है। स्त्रियों को कानों में कर्णफूल, कुण्डल, नाक में बेसरि, ग्रीवा में हार, कलाइयों में चूड़ियाँ, कड़े आदि, उंगलियों में अंगूठियाँ, माथे पर बेंदी, पैरों में पायल और भुजाओं पर भुजबंद पहने बनाया गया है कभी-कभी स्त्रियों को पेशवाज और रेशम का दुपट्टा पहने भी बनाया गया है। पुरुषों का पहनावा सिर पर कलगीदार पगड़ी, शरीर पर जामा तथा नीचे चुस्त पाजामा (चूड़ीदार पाजामा) है। पुरुषों के कन्धे पर लटकता पटका और

नवीन शैली पर यूरोपियन कला का भद्दा प्रभाव था। इस स्कूल का प्रमुख विषय शबीह चित्रण था और बहुधा छवि चित्रों में व्यक्ति की वास्तविक सादृश्यपूर्ण आकृति का सफल अंकन हुआ है। चित्र में अन्य साज-सामान के चित्रण में अवध की अपनी अनोखी रुचि दिखाई पड़ती है। इसी समय राजस्थानी कला का भी अधोपतन हो रहा था।

राजस्थान तथा पंजाब की शैलियाँ—राजस्थान के प्रमुख नगरों जैसे जयपुर, उदयपुर, नाथद्वारा, किशनगढ़ तथा बूंदी आदि नगरों में चित्रकार बाजारू ढंग से धार्मिक चित्र या व्यक्ति चित्र बना रहे थे। ये लघु चित्र विधान तथा शैली में मध्यकालीन परम्परा के अधिक द्योतक थे। परन्तु फिर भी पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों में मध्यकालीन जीवन पद्धति जीवित रहने के कारण उन्नीसवीं शताब्दी तक हिन्दू भावना से परिपूर्ण कुछ उत्तम चित्रों का निर्माण होता रहा। पंजाब में लाहौर तथा अमृतसर नगरों में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में सिक्ख चित्रकारों की कृतियाँ अधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुई। इन सिक्ख चित्रकारों की कृतियों में पूर्व और पश्चिम की कला का अपूर्व समावेश है। कपूरसिंह नामक एक चित्रकार ने अनेक लघुचित्रों का निर्माण किया। इन चित्रों में रेखांकन की कुशलता और गति दर्शनीय है।

पटना शैली—उथल-पुथल के इस अनिश्चित वातावरण में दिल्ली से कुछ मुगल शैली के चित्रकारों के परिवार आश्रय की खोज में भटकते हुए पटना (बिहार) तथा कलकत्ता (बंगाल) में जा बसे। यहाँ पर इन चित्रकार परिवारों ने एक विशिष्ट शैली को जन्म दिया, जो पटना या कम्पनी शैली के नाम से प्रसिद्ध है। दिल्ली सल्तनत की औरंगजेब काल में अवस्था बिगड़ने पर अनेक कलाकार दिल्ली छोड़कर नवाब मुर्शिदाबाद के आश्रय में पहुँच गए। नवाब मुर्शिदाबाद ने इन कलाकारों को लगभग चालीस वर्ष तक अच्छा संरक्षण दिया परन्तु अफगान, मराठा, रुहेला और जाट आक्रमणों के कारण तथा विशेष रूप से कम्पनी के झगड़ों आदि के कारण नवाब की स्थिति खराब हो गई। इन चालीस वर्षों तक मुर्शिदाबाद कला का केन्द्र बना रहा परन्तु १७५०-१७६० ई० के मध्य कलाकारों को पुनः आश्रय की खोज में भटकना पड़ा। ये चित्रकार मुर्शिदाबाद छोड़कर इस समय पटना होते हुए कलकत्ता जा बसे, इस प्रकार पटना में भी दिल्ली-कलम पहुँची। इसी समय दूसरे कलाकार परिवार भी वहाँ जाकर बस गए।

पटना व्यापारिक केन्द्र था और अंग्रेज़ी सरकार के अनेक कार्यालय पटना में थे। इस प्रकार अंग्रेज़ों का वहाँ रहना स्वाभाविक था। ये अंग्रेज़ अधिकारी इन भारतीय चित्रकारों से अपने लघु व्यक्तिचित्र बनवाते थे और विशेष रूप से भारतीय पशु-पक्षी तथा प्रकृति के चित्रों की मांग करते थे। इस प्रकार के अनेक चित्र कमिश्नर टेलर तथा दूसरे अंग्रेज़ अधिकारियों ने बनवाये और इंग्लैंड भेजे, इसलिए इस शैली को कम्पनी शैली या जॉन कम्पनी शैली के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार के अनेकों चित्र पटना संग्रहालय तथा विदेशी कला वीथिकाओं में सुरक्षित हैं।

पटना शैली के दो चित्रकारों को वाराणसी के महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह (१८३५-१८८९ ई०) ने संरक्षण दिया। ये कलाकार लालचंद और उसका भतीजा गोपालचंद थे। कहा जाता है कि ये दोनों काशी के चित्रकार दल्लूलाल के शिष्य थे। ये दोनों चित्रकार पटना शैली में व्यक्ति चित्र बनाने में निपुण थे।

पटना शैली या कम्पनी शैली के अधिकांश चित्र राजा, रईसों जागीरदारों या अंग्रेजों के आदेश पर बनाये गए। इसी समय चित्रकारों ने अबरक (अभ्रक) के पत्रों पर अतिलघु चित्रों का निर्माण आरम्भ किया।

उन्नीसवीं शताब्दी को पटना शैली के उत्थान का समय माना जाता है। इस समय में पटना शैली के चित्रकारों में सेवकराम का नाम प्रमुख है। लाला ईश्वरी प्रसाद (कलकत्ता आर्ट स्कूल के भूतपूर्व उपाध्यक्ष) के पितामह शिवलाल भी पटना के वंश परम्परागत चित्रकार थे। इनके अतिरिक्त हुलासलाल, जयराम दास, झूमकलाल, फकीरचंद आदि चित्रकारों का कार्यकाल १८३०-१८५० ई० के मध्य माना गया है। इस समय पटना के चित्रकारों ने फिरका-चित्रों के अतिरिक्त कागज़ तथा हाथी-दाँत फलकों पर भी चित्र बनाये। पटना शैली के चित्रकारों ने हाथी, घोड़े आदि जानवरों तथा सवारियों आदि के चित्र भी अंकित किये। पटना शैली के चित्रों में जनसाधारण जैसे 'मछली बेचने वाली', 'टोकरी बुनने वाले', 'चक्की वाले', 'लोहार', 'दर्ज़ी', 'सेविका' आदि को भी चित्रित किया गया।

पटना शैली के चित्रों में रेखांकन की यथार्थता है, तथापि भावना की कमी है, परन्तु आकृति की सीमारेखाएँ बहुत संतोषजनक बनायी गई हैं। कुछ समय तक पटना शैली के चित्रकारों को ईस्ट इंडिया कम्पनी के यूरोपियन व्यवसाइयों और एंगलो इंडियन्स का संरक्षण प्राप्त होता रहा। इन संरक्षकों ने भारतीय तथा यूरोपियन मिश्रित शैली के शबीह चित्रों की मांग की। इन चित्रों में मानव आकृतियों को बहुत कोमलता से चिकना, रोगनयुक्त और बारीकी से बनाने की चेष्टा की गई है। इन चित्रों में दिल्ली-क़लम की कारीगरी पर्याप्त समय तक बनी रही, परन्तु रंग भद्दे हैं। सामान्यतः भूरे, गंदे हरे, गुलाबी तथा काले (स्याही) रंगों का चित्रों में प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के अनेकों चित्र प्राप्त हैं जो 'जान कम्पनी' काल की कला के द्योतक हैं।

दक्षिणी भारत के राज्यों की कला—मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही उत्तरी-भारत की राजनैतिक अवस्था विशृंखलित होने लगी, परन्तु दक्षिणी भारत के अनेक राज्य स्थिर रूप में कला विकास में योगदान प्रदान कर रहे थे। दक्षिणी-भारत में चित्रकला का उत्तरी-भारत की अपेक्षा भिन्न रूप में विकास हुआ। दक्षिण में सोलहवीं शताब्दी से ही फारसी चित्रण-शैली प्रचलित थी। सम्भवतः फारसी चित्रकला को तुर्कमान शासकों ने अपने-अपने मुसलमानी राज्यों में आश्रय प्रदान किया। इस शैली के आरम्भिक चित्र उदाहरणों में तैमूरिया कला का प्रभाव परिलक्षित होता है परन्तु कालान्तर में स्थानीय प्रदेश तथा राजस्थानी कला के संयोग से इस शैली का रूप परिवर्तित हो गया और यह

(104)

शैली बहुत कुछ मुगल शैली के समान दृष्टिगोचर होने लगी, परन्तु फिर भी इस चित्रकला में कुछ नगण्य सी अपनी निजी विशेषताएँ स्थायी रूप से प्रचलित रहीं, जिनके फलस्वरूप इस शैली का विकास उत्तरी-भारत की चित्रकला से सर्वथा भिन्न रहा। मुगल साम्राज्य के पतन से चित्रकारों के अनेक परिवार दक्षिण में भी आश्रय की खोज में पहुँचे। इन चित्रकारों ने सम्भवतः दक्षिणी शैलियों को बल तथा शक्ति प्रदान की। दौलताबाद तथा औरंगाबाद के चित्रकारों की कृतियाँ उत्तरी-भारत के चित्रकारों की कृतियों की तुलना में छोटी हैं और उनमें वह जीवन तथा गति नहीं है और चित्रों के विषय प्रायः ऐतिहासिक हैं जो समकालीन दक्षिण के शासकों से सम्बन्धित हैं। इन चित्रकारों के वंशज आज भी हैदराबाद तथा निकोण्डा में परम्परागत रूप से कारीगरी आदि के काम करते हैं।

भारत के सुदूर दक्षिणी क्षेत्रों में चित्रकला भिन्न रूप में ही जीवित रही, परन्तु चित्रों की परम्परा तथा शैली उसको उत्तरी भारत की कला से निबद्ध कर देती है। तारानाथ ने दक्षिण की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है। लामा तारानाथ ने दक्षिण के तीन कलाकारों जय, पराजय तथा विजय का उल्लेख किया है। इन चित्रकारों के अनेक अनुयायी थे। दक्षिण की चित्रकला का विकास दो भिन्न-भिन्न संस्थाओं—तंजौर तथा मैसूर में हुआ।

तंजौर शैली—तंजौर के चित्रकारों की शाखा के विषय में ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहाँ चित्रकार राजस्थानी राज्यों से आये। इन चित्रकारों को राजा सारभोजी ने अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत में आश्रय प्रदान किया। ये चित्रकार हिन्दू थे अतः इस बात की पुष्टि होती है कि राजस्थानी राज्यों की अवस्था खराब होने पर आश्रय की खोज में भटकते हुए ये चित्रकार सुदूर दक्षिण के हिन्दू राज्यों में आकर बस गए। इस प्रकार तंजौर में राजस्थानी चित्रकला पहुँच गई और राजकीय संरक्षण प्राप्त कर यह कला-शैली पुनः एक स्थानीय शैली के रूप में प्रस्फुटित होने लगी। आरम्भ में इस शैली के चित्रकार बहुत कम थे परन्तु कालान्तर में इनकी संख्या बहुत अधिक हो गई और तंजौर के अंतिम राजा शिवाजी (१८३३-५५ ई०) के राज्यकाल में चित्रकारों के अट्ठारह परिवार थे जो हाथी-दाँत तथा काष्ठफलक पर चित्रकृतियाँ बनाते थे। काष्ठ-फलकों पर ये चित्रकार जल रंगों के द्वारा चित्र बनाते थे। इन चित्रों में सोने के पत्र अतिरिक्त बहुमूल्य हीरे तथा जवाहरात भी लगाये जाते थे। इन चित्रकारों ने मानवाकार व्यक्ति चित्र तैल रंगों में बनाये। ये चित्र आज तंजौर के राजमहल तथा पद्दुकोट्टा के प्राचीन राजमहल में सुरक्षित हैं।

१८५५ ई० में शिवाजी की मृत्यु से इस राजवंश का अंत हो गया और इस राज-वंश के साथ ही चित्रकारों का राजकीय संरक्षण भी समाप्त हो गया। अतः चित्रकारों को दूसरे उद्योग धन्धों में लगना पड़ा जिससे कि वह अपनी आजीविका का निर्वाह कर सकें। कुछ चित्रकार सुनारगीरी का कार्य करने लगे तो कुछ सोला टोपी या कसीदाकारी आदि के काम में लग गए। अनेक वंश परम्परागत चित्रकार अभी भी अपना व्यवसाय चलाते रहे और इनकी बाज़ारू कृतियाँ जनता में प्रचलित रहीं। इन चित्रों के विषय धार्मिक थे अतः स्थानीय

हिन्दू जनता में ये कृतियाँ बहुत लोकप्रिय बन गईं। इन चित्रों में कलात्मक विशेषताएँ बहुत कम हैं और सोने के रंग तथा पिसे हुए जवाहरातों का चित्रों में प्रयोग किया गया है, परन्तु चित्रों में कारीगरी बहुत उत्तम कोटि की है। आरम्भ में तंजौर शैली में प्रमुख रूप से हाथी दाँत के फलकों पर शबीह चित्र बनाये गए जो बहुधा छः इंच लम्बे आकार के थे।

मैसूर शैली—दक्षिण के एक दूसरे हिन्दू राज्य मैसूर में एक भिन्न प्रकार की कला शैली का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मैसूर की चित्रकला राजा कृष्णराज के संरक्षण में अत्यधिक उन्नति को प्राप्त हुई। राजा कृष्ण राज के संरक्षण से पूर्व ही मैसूर शैली लगभग एक सौ वर्ष से प्रचलित थी और विकासोन्मुख हो रही थी। राजा कृष्णराज के शासन-काल में दरबारी कलाकारों ने अधिक ख्याति प्राप्त की। राजा ने चित्रकारों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। इस प्रकार के प्रमाण हैं कि राजा स्वयं एक मनोनीत विषय पर अनेक चित्रकारों को तुलनात्मक ढंग से चित्रांकन करने के लिए बहुत अधिक प्रेरणा देता था। तंजौर के चित्रकारों के समान मैसूर के चित्रकारों ने भी हाथी-दाँत के फलकों पर अनेक शबीह चित्र बनाये जिनका संग्रह मैसूर के राजमहल में प्रदर्शित किया गया है। १८६८ ई० में राजा कृष्णराज के निधन के साथ ही चित्रकार भी इधर-उधर चले गए और यह शैली समाप्त हो गई।

विदेशी कला का आगमन—उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भारतवर्ष में चित्रकला का अधपतन हो गया और चित्रकला की कलात्मक विशेषताओं का लोप हो गया। चित्रकार पुरानी लकीरें पीटते रह गए और सृजनात्मक सत्ता का पूर्णतया लोप हो गया। इस प्रकार की चित्रकला की बुझती लौ बाज़ारू कृतियों की धूमिल टिमटिमाहट बनकर उत्तरोत्तर घटती गई। अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत में और उन्नीसवीं के आरम्भ में लगभग पचास से अधिक अंग्रेज़ी चित्रकार भारतवर्ष में आये, इनमें से कई चित्रकार अपने व्यवसाय में बहुत दक्ष थे। विशेष रूप से ये विदेशी चित्रकार राजाओं और रईसों के व्यक्तिचित्र तैल रगों से बड़े आकार (आदम कद, मानवाकार) में बनाकर धन कमाने की लालसा से भारत आये थे। इनके चित्रों की मांग देश के धनी वर्ग, राजाओं, नवाबों, जागीरदारों तथा जमींदारों आदि में इतनी बढ़ी कि भारतवर्ष की रूढ़िवादी परम्परागत चित्रकला की बाज़ारू शैली भी समाप्त हो गई। भारतीय चित्रकला का भविष्य अनिश्चित सा दिखाई पड़ने लगा। १८५७ ई० के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता युद्ध में भारतीय पराजय के बाद अंग्रेज़ी राज्य और सत्ता ने सम्पूर्ण भारत की आस्था और विश्वास को ऐसी ठेस पहुँचाई कि देश की चित्रकला के विषय में सोचना कठिन था। देश में विदेशी सत्ता और शासन आ जाने के साथ विदेशी शिक्षा और मशीनें भी भारत में आने लगीं।

देश में अनेक विदेशी चित्रकारों के आने से और तैलचित्रों की उत्तरोत्तर बढ़ती मांग के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में एक नवीन कलाधारा का प्रवाह प्रस्फुटित हुआ जो अधिक स्थायी न था। यह धारा पाश्चात्य कला की थी, और इसने

प्रेरित अनेक भारतीय चित्रकारों ने दक्षिण भारत में सर्वप्रथम पाश्चात्य चित्रकला में दक्षता प्रदर्शित की। इन चित्रकारों में राजा रविवर्मा का नाम अग्रगण्य है। राजा रविवर्मा ने यूरोपियन कला पद्धति के अनुरूप भारत की चित्रकला की धारा को नव-ज्योति प्रदान करने की चेष्टा की।

राजा रविवर्मा—१८४८ ई० में राजा रविवर्मा का जन्म ट्रावनकोर नामक स्थान में हुआ और उनका १६०५ ई० में स्वर्गवास हुआ। राजा रविवर्मा ने अपनी अल्प आयु के लगभग तीस वर्ष भारतीय चित्रकला के प्रसार और प्रचार हेतु समर्पित कर दिए। राजा रविवर्मा ने थियोडोर जेनसन तथा अन्य यूरोपियन चित्रकारों से, जो दक्षिण भारत भ्रमण के लिए आते थे, कला दीक्षा ली। राजा रविवर्मा ट्रावनकोर के राजा राजवर्मा के सम्बन्धी थे, अतः राजा और राज-परिवार के सदस्यों ने रविवर्मा की सहायता की। राजा रविवर्मा की कृतियों ने सम्पूर्ण देश में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की। राजा रविवर्मा ने व्यक्ति-चित्रों, दृश्य-चित्रों, धार्मिक तथा पौराणिक हिन्दू कथानकों पर आधारित चित्रों का निर्माण किया। उनकी चार बहुमूल्य कृतियाँ बैंक्वेटिंग हाल मद्रास में आज सुरक्षित हैं। राजा रविवर्मा ने पाश्चात्य प्रणाली पर यथार्थ शैली में भारतीय धार्मिक कथाएँ चित्रित कीं जिनको जनता ने अत्यधिक श्रद्धा और आदर से सराहा और ये चित्र छपकर सस्ते हो जाने के कारण जनता में बहुत प्रचलित हुए। राजा रविवर्मा ने अपने चित्रों के प्रकाशनार्थ बम्बई (मुम्बई) में लीथोग्राफ प्रेस खोला और उसी के द्वारा रविवर्मा के चित्र सारे देश में प्रचलित हो गए। उनके द्वारा अंकित पौराणिक चित्रों का विशेष आदर हुआ। आज भी रविवर्मा प्रेस चित्र प्रकाशन करता है। राजा रविवर्मा ने अपने समसामयिक मद्रास के चित्रकार अलेग्री नायडू से चित्रकला की शिक्षा ली थी। उस समय तैल चित्रण में नायडू का नाम बहुत प्रसिद्ध था। नायडू के लिए ट्रावनकोर के महाराजा स्वती त्रियूमल ने १८२० ई० से १८४७ ई० तक संरक्षण प्रदान किया। भारत में नायडू को उस समय यूरोपियन पद्धति का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार समझा जाता था।

राजा रविवर्मा को ट्रावनकोर के महाराजा और बड़ौदा के गायकवाड़ तथा अन्य धनाढ्य व्यक्तियों का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस समय से गायकवाड़ के संरक्षण में रविवर्मा ने अपना ध्यान विशेष रूप से हिन्दू धर्म की कथाओं तथा पौराणिक प्रसंगों के चित्रण में लगाया। राजा रविवर्मा के इन चित्रों में काव्यगत भावना और उन्नत कल्पना नहीं है और इनको केवल रंगमंच की अनुकृति या धारणा माना जा सकता है। इन चित्रों का विषय तो पूर्णतया भारतीय था, परन्तु शैली और संविधान पूर्णतया पाश्चात्य था, क्योंकि इन चित्रों की रचना जीवित व्यक्तियों को चित्र की विभिन्न आकृतियों (पात्रों) के स्थान पर नाटक जैसे रंगमंच पर व्यवस्थित करके उनसे की गई है। इन जीवित व्यक्तियों या माडलों से चित्रों का यथार्थ पद्धति में छाया प्रकाश की पूर्णता, शारीरिक गठन, माँस-पेशियों की सुडौलता तथा नाटकीयता का पूर्ण ध्यान रखते हुए अनुकरण पद्धति पर अंकन किया गया है। इन चित्रों में शारीरिक बनावट सुंदर है और माँस-पेशियों की सुडौलता पर विशेष

ध्यान दिया गया है। परन्तु इन चित्रों में धार्मिक भावना का प्रादुर्भाव न हो सका और ये चित्र साधारण स्थूल जगत की [illegible] मात्र बनकर रह गए।

राजा रविवर्मा के चित्रों की आनंद कुमारस्वामी ने कटु आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि 'रविवर्मा के चित्र नाटकीय है।' रविवर्मा के चित्रों का तत्कालीन रंगमंच से स्पष्ट सम्बन्ध था और इसके अनेक कारण थे। रविवर्मा ने स्वयं कहा था कि–'उन्होंने प्राचीन पौराणिक वेश-भूषाओं की खोज की थी और इसके लिए वे उत्तर-भारत में राम तथा कृष्ण के पावन तीर्थधामों का पर्यटन करने भी गये।' परन्तु अधिक सफलता न देख उन्होंने तत्कालीन लोक जीवन तथा उस समय की प्रचलित नाटक मण्डलियों (पारसी नाटक कम्पनियों) से प्रेरणा ग्रहण की और उसी के आधार पर उन्होंने देवी-देवताओं के पौराणिक रूप को चित्रों में प्रस्तुत किया। राजा रविवर्मा ने चित्रकला के इस नवजागरण में अकेले ही व्यक्तिगत रूप से प्रयास किया। परन्तु कालान्तर में जो कला-जागरण की चेतना दिखाई पड़ी, उसमें सामूहिक जनभावना स्वाधीनता संघर्ष और राष्ट्रीय जागरण के आंदोलन की अखिल भारतीय चेतना निहित थी।

इसी समय में राजा रविवर्मा के समसामयिक चित्रकारों में रामास्वामी नायडू को बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई। रामास्वामी ने भी बड़े आकार के तैल चित्रों का निर्माण किया। भारतीय चित्रकला का व्यवसाय समाप्त हो रहा था और चित्रकार अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे क्षेत्रों में लगते जा रहे थे। दूसरी ओर विदेशी शासक अपनी संस्कृति को पैठाने के लिए कला प्रशिक्षण हेतु आर्ट-स्कूलों की स्थापना कर रहे थे। इन आर्ट स्कूलों में भारतीय विद्यार्थियों को पाश्चात्य शैली पर चित्रकला का अभ्यास कराया जाता था। यूरोप के केंसिंग्टन स्कूल की शिक्षा पद्धति इन स्कूलों में प्रचलित थी। यहाँ पर विद्यार्थी स्टिल लाइफ (पदार्थ चित्रण), पोरट्रेट (मुखाकृति चित्रण) तथा लैंडस्केप (दृश्य चित्रण) का चित्रण कार्य यथार्थ शैली में करते थे, परन्तु उनके कार्य में कोई प्रगति नहीं हो रही थी, और उनके लिए छाया तथा प्रकाश का प्रभाव समझना एक समस्या थी। अतः इन आर्ट-स्कूलों में भारतीय छात्रों का व्यर्थ ही समय नष्ट हो रहा था। इसी समय कलकत्ता, बम्बई (मुम्बई), लाहौर और मद्रास में आर्ट-स्कूलों की स्थापना हो चुकी थी। इन स्कूलों में साधारण स्तर के यूरोपियन अध्यापकों के द्वारा कला शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन सरकारी आर्ट-स्कूलों के विद्यार्थियों ने किसी भी ऐसी उच्च कृति का सृजन नहीं किया जिसे महान कहा जा सके। १९०२-१९०३ ई० में दिल्ली में, इन स्कूलों के विद्यार्थियों के अनेक तैल तथा जल रंगों से बने चित्रों की प्रदर्शनी की गई परन्तु इन चित्रों में कोई भी कलात्मक उपलब्धि नहीं थी। ये चित्र यूरोपियन शैली के अनुकरण पर बनाये गए थे। इस प्रदर्शनी के चित्रों के विषय में कलकत्ता आर्ट स्कूल के भूतपूर्व प्रिंसिपल परसी ब्राउन ने सर जार्ज वाट द्वारा सम्पादित पुस्तक 'इंडियन आर्ट एट दिल्ली' में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की–"ये चित्र अत्यन्त भद्दे और कर्कश थे, इनका रेखांकन त्रुटिपूर्ण था और शैली तथा रंग की दृष्टि से ये चित्र अकुशल कलाकारों की कृतियाँ जैसे थे।"

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में अंग्रेज़ शासकों ने विक्टोरियाकालीन विदेशी चित्रकला का भारत में बीजारोपण करने की अथक चेष्टा की, परन्तु यह कला वृक्ष विकसित न हो सका। इस समय भारतीय चित्रकला का पूर्णतः ह्रास हो चुका था और शासक वर्ग के द्वारा अंग्रेज़ी संस्कृति तथा कला रोपने के प्रयत्न हो रहे थे। आनंद कुमार स्वामी ने अपने देश की कला विलुप्ति के लिए 'अधिकांश तथाकथित अंग्रेज़ी शिक्षा के द्वारा उत्पन्न रुचियों के परिणाम को कला विलुप्ति के लिए उत्तरदायी बताया है, यूरोपियन कला का अनुसरण हमारे देश की कला को जीवन प्रदान न कर सका।' प्रायः ऐसा देखा गया है कि दो संस्कृतियों के संसर्ग में दोनों में ही आदान-प्रदान होता है और दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे से परस्पर कुछ ग्रहण करती हैं और कला प्रतिभा एक नवीन पथ प्रशस्त करती है। उस समय देश की अवस्था ऐसी थी कि एक ओर अंग्रेज़ शासक प्रभुता के हठ में थे, और दूसरी ओर भारतवासी दासता, दरिद्रता और हीनता से उत्पन्न उदासीनता में रहने के कारण सांस्कृतिक आदान-प्रदान करने के लिए उन्मुख न हुए और उनमें स्वाधीनता प्राप्ति तथा राष्ट्रीयता की भावना जाग रही थी। इस प्रकार कला एक कुंठित अवस्था की द्योतक मात्र ही रह गई। यह स्तब्धता की स्थिति राजनीति, समाज, शिक्षा, कला तथा विश्वास सभी क्षेत्रों में थी। इस प्रकार की स्थिति बहुत समय तक नहीं चल सकती थी। यदि संस्कृति का समन्वय सम्भव न था तो विद्रोह निश्चित था। भारतीय कला ने इस भावना के नवजागरण का रूप ग्रहण किया और पुनः कला-विकास की नवीन आशाओं का सूत्रपात हुआ।

कला का पुनरुत्थान

ई० बी० हैवेल—हैवेल सन् १८८४ ई० में सर्वप्रथम मद्रास कला विद्यालय के प्राचार्य बने। १८९६ ई० में उन्होंने संसार का ध्यान भारतीय कला की ओर आकर्षित किया। भारतीय कला और संस्कृति के जागरण की ओर जब भारतीय जनता का ध्यान आकर्षित हो रहा था, उसी समय कलकत्ता आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में हैवेल आये। ई० बी० हैवेल के सहयोग से बंगाल में एक नवीन कला आंदोलन आरम्भ हुआ। हैवेल ने बंगाली विद्यार्थियों को केवल विदेशी-रीतियों पर कला सिखाने की त्रुटि को समझा और उन्होंने भारतीय जीवन और आदर्श से पूर्ण मुगल तथा राजपूत कला की ओर ध्यान दिया। हैवेल ने यूरोपियन चित्रों की नकल बनवाने की प्रथा को उचित न समझा। किन्तु इस प्रकार अंग्रेज प्रिंसिपल के द्वारा भारतीय कला पर ज़ोर देने की बात को बंगाल की जनता ने रहस्यपूर्ण माना और बंगाल की जनता ने उनके इस आंदोलन के प्रति एक क्षोभ और प्रतिक्रिया प्रदर्शित की। अनेक बंगला पत्र-पत्रिकाओं में इस आशय के लेख प्रकाशित हुए कि अंग्रेज़ अपनी कला भारतीय को नहीं सिखाना चाहते। इस प्रकार बंगाल की जनता में इस नवीन शिक्षण पद्धति के प्रति अत्यन्त रोष फैला।

स्व० श्री अहिवासी की देखरेख में बम्बई के कला अभ्यासी छात्रों ने प्राचीन भारतीय कला शैलियों जैसे अजन्ता, राजपूत तथा कांगड़ा आदि शैलियों का विशेष रूपसे अध्ययन किया और उनकी देखरेख में इन चित्रकारों ने इन शैलियों को अपनी कला का आधार बनाया। भारतीय कला के विकासोन्मुख रूप के साथ बम्बई आर्ट-स्कूल ने पाश्चात्य शैली का भी अति उत्तम रूप विकसित किया। अनेक चित्रकारों ने यथार्थ शैली में पाश्चात्य ढंग से दृश्य-चित्रण, पदार्थ-चित्रण, व्यक्ति-चित्रण (पोरट्रेट), द्रुतरेखांकन (स्केचिंग) तथा स्मृति-चित्रण में प्रगति की। इस स्कूल के चित्रकारों ने टेम्परा तथा तैल चित्रण की पाश्चात्य पद्धति पर अधिक बल दिया और सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ प्रस्तुत की।

नूतन प्रवृत्तियाँ

यद्यपि आधुनिक युग के अन्तर्गत अवनीन्द्रनाथ तथा नन्दलाल बसु दोनों ही व्यक्ति आ जाते हैं, फिर भी वे एक विगत परम्परागत कला के समर्थक या उद्धारक ही कहे जा सकते हैं, वास्तव में यह परम्परागत कला या एकेडमीवाद की जो नवीन पाश्चात्य धारा चली वह कला के आदर्श रूप और पाश्चात्यपन की प्रभावशाली समस्याओं को नहीं सुलझा सकी। इस आंदोलन में दो विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रवाहित हो रही थी इस कारण कलाकार कभी एक ओर झुक जाते थे और कभी दूसरी ओर। इस आंदोलन की नीरसता तथा निर्बलता ने युवा कलाकारों को एक अन्य दिशा की ओर अग्रसर होने के लिए विवश किया। नवोदित चित्रकारों ने जन-रुचि की अवहेलना न कर कला को जनसुलभ और सामान्य बनाने का प्रयत्न किया। कला क्षेत्र में विडम्बना की यह स्थिति रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्र-कृतियों के समय तक ज्यों की त्यों बनी रही। इसी समय यामिनीराय भी एक आधुनिक चित्रकार के रूप में प्रतिक्रियावादी बनकर कला जागरण के क्षेत्र में आये। यामिनीराय ने लोककला के आधार पर भारतीय कला को नवीन जीवन प्रदान करने की नूतन चेष्टा की।

इस नवीन प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कलाकारों को ऐकेडेमीवाद से हटकर अपनी नूतन प्रवृत्तियों को दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। लोक-साहित्य, लोक-कला, सरल भक्ति सम्प्रदाय, कृषकों तथा नाविकों के घरों की कला तथा गीतों, कबीर, दादू तथा अन्य लोकप्रिय रहस्यवादी संतों की वाणी ने कलाकारों में सरल और सुलभ आकृतियों के निर्माण की चेतना को प्रोत्साहन दिया। १६४० ई० तक मान्यताएँ बदल गई और नूतनवादी कलाकृतियों की प्रदर्शनियाँ कलकत्ता में मान्यता प्राप्त करने लगी।

यामिनीराय—यामिनीराय का जन्म ग्राम बेलियातोर जिला बांकुड़ा (पश्चिमी बंगाल) में १८८७ ई० में हुआ। यामिनीराय सोलह वर्ष की अवस्था में कलकत्ता आये और उन्होंने गवर्नमेंट आर्ट स्कूल से कला का प्रशिक्षण समाप्त कर आरम्भ में पाश्चात्य शैली में चित्र बनाये। उनको शबीहकार के रूप में ख्याति-प्राप्त हुई, परन्तु बाद में उन पर बंगाल स्कूल का प्रभाव भी पड़ा।

उनकी स्वच्छन्द अभिरुचि को तत्कालीन कला-धारा से संतोष प्राप्त नहीं हुआ और मौलिक सृजन के प्रति उनकी इच्छा अधिक बलवती हुई। १९२१ ई० में लगभग चौंतिस वर्ष की अवस्था में उनका ध्यान बंगाल की लोक कला और गया (बिहार) के पट-चित्रण की ओर गया। यामिनीराय लोक कला से प्रेरणा ग्रहण करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे। वह बंगाल के अनेक गाँवों में गए जहाँ वह कुम्हारों, बुनकरों, गुड़ियाँ तथा खिलौने बनाने वालों आदि की कृतियों को देखते, समझते और रेखांकित करते रहे। इस ग्रामीण लोक कला के अध्ययन से उनको इस बात का ज्ञान हुआ कि इन परम्परागत ग्रामीण कलाकारों ने अनायास ही रंगों, आकारों तथा छन्द के रहस्य को पा लिया है। यामिनी ने लोककला के अभिप्रायों तथा प्रतीकों को ग्रहण कर अपनी नवीन चित्रात्मक सुव्यवस्था में संजोया। इन कृतियों की नवीनता से उनको मानसिक संतोष भी प्राप्त हुआ। आर्थिक संकट होते हुए भी वह अपने जीवन संघर्ष के साथ नवीन प्रयोग चलाते रहे, परन्तु बहुत समय तक कला क्षेत्र में उनको मान्यता न प्राप्त हो सकी। धीरे-धीरे युग परिवर्तन के साथ उनकी कला के सरलतम रूप को कला आलोचकों ने पहचाना और सराहा। १९२६ ई० से १९३६ ई० के मध्य यामिनी बाबू मेयो कला विद्यालय लाहौर में सहायक निदेशक के पद पर कार्य करते रहे। उसके पश्चात् वे लगभग दो वर्ष तक फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज में प्रधान पद पर रहे। १९३८-४७ ई० के मध्य उन्होंने लाहौर के सिटी स्कूल आफ फाइन आर्ट्स के निदेशक पद पर कार्य किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारत-विभाजन के समय वे दिल्ली आ गए, वहाँ उन्होंने शिल्प-चक्र संस्था की स्थापना की।

यामिनीराय ने अपनी कला प्रेरणा के विषय में स्वयं लिखा है कि-"मैं बाल-कला से प्रेरित हूँ।

उन्होंने टेम्परा रंगों के द्वारा कपड़े, कागज़ तथा पट्ठे पर नवीन प्रयोग किये हैं। उनके चित्रों में अधिकांश सपाट रंग, सरल आकार और चमकदार वर्ण विधान को अपनाया गया है। अधिकांश चित्रों की रेखाएँ मोटी परन्तु अत्यधिक बलवती हैं। यामिनीराय के चित्रों की एकल प्रदर्शनी ए० सी० ए० गैलरी न्यूयार्क में १९५० ई० में आयोजित की गई। इस प्रदर्शनी में पट्ठे, कपड़े, कागज तथा चटाई पर बने चित्र थे। इस एकल प्रदर्शनी को बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई परन्तु १९५४ ई० से यामिनीराय ने काष्ठ-मूर्ति निर्माण में अधिक रुचि प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया था। उनकी कलाकृतियों में 'ईसामसीह', 'शृंगार', 'नर्तकी' तथा 'मृदंग वादक' आदि उत्तम चित्र कृतियाँ हैं। १९५५ ई० में रायबाबू को 'पद्मविभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस महान चित्रकार का ८८ वर्ष की आयु में २४ अप्रैल १९७२ ई० में कलकत्ता में स्वर्गवास हो गया। उनको भारत का पिकासो कहा जाता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का जन्म जोरसांको (कलकत्ता) में १८६१ ई० में हुआ और विश्व कवि का सम्मान प्राप्त कर वे १९४१ ई० में स्वर्ग सिधारे। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जब पचास वर्ष की काव्य साधना के पश्चात् चित्रकला का अभ्यास लगभग १९२४ ई० में गंभीरता से आरम्भ कर दिया, तो उन्होंने एक नवीन पाश्चात्य

विचारधारा के आधार पर रचना आरम्भ की जो कल्पना और मानसिक तत्व के आधार पर ही आधारित थी। टैगोर अपने काव्य-कौशल के आधार पर १९१३ ई० में 'नोबिल पुरस्कार' ही नहीं प्राप्त कर चुके थे वरन् पाश्चात्य कला जगत की प्रभाववादी विचारधारा और कलाकृतियों और नवीन प्रवृत्तियों से भी भलीभाँति परिचित हो चुके थे। अंततः उन्होंने पाश्चात्य कलाकारों के समान ही बाह्य रूप और यथार्थ अनुकरण की सीमा को तोड़कर भावना को पहचाना। उन्होंने अपने अचेतन जगत से प्राप्त रंग, रेखाओं तथा आकारों में अपनी अभिव्यक्ति की। रंग के धब्बों तथा पांडुलिपियों में कांट-छांट के चिन्हों के संयोजन

रेखाचित्र सं० २४–
'पेन स्केच'– रवीन्द्रनाथ टैगोर

में उनको अपनी आत्मा की लय तथा छन्द प्राप्त हुआ। पाडुलिपियों और स्याही के धब्बों में इस कवि को अपने अचेतन जगत की सुसुप्त भावनाएँ दिखाई दीं फिर क्या था कवि चित्रकार बन गया। रवीन्द्र बाबू ने अपने चित्रों की आकृतियों को कल्पना के आधार पर बनाया है यथार्थ नहीं। उनके शब्दों में–'कला में सत्य का अस्तित्व तब ही निहित रहता है जब वह हमको यह कहने के लिए बाध्य कर देता है कि 'मैं देखता हूँ'।[3]

टैगोर की चित्राकृतियों को 'पागल व्यक्ति की कला' कहकर पुकारा गया, परन्तु उन्होंने इस वाक्य का उत्तर इस प्रकार दिया–''मेरे चित्रों का जन्म (सृजन) किसी शिल्प-कुशल अनुशासन या परम्परा में नहीं हुआ है और वे जान-बूझकर की गई किसी वस्तु की अभिव्यक्ति का प्रयास नहीं है।''[4] टैगोर का यह कथन सत्य है, क्योंकि उनकी कृतियों में रंग, रेखा और आकारों की अकलात्मक, सहज और अनगढ़ व्यवस्था है और उनकी रचनाओं में केवल बौद्धिक प्रयास अधिक है। अमर कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १९२० ई० में शान्ति निकेतन के प्रांगण में 'कला भवन' (आर्ट स्कूल) की स्थापना की। १९३० ई० में उन्होंने अपने चित्रों की एकल प्रदर्शनी पेरिस में आयोजित की। 'कला भवन' की स्थापना के पश्चात् अवनीन्द्रनाथ ने शान्ति निकेतन में कला भवन का अध्यक्ष पद ग्रहण कर लिया और अंतिम दिनों तक वे वहीं कार्य करते रहे।

इस प्रकार बंगाल स्कूल के पतन के साथ भारतीय चित्रकला में पुनः जीवन फूँकने के नवीन प्रयास हुए जिनमें पाश्चात्य विचारधारा और बौद्धिकता की छाप थी। इसी समय में पाश्चात्य कला की विशेष मर्मज्ञा एक चित्रकर्त्री कुमारी अमृता शेरगिल की कला ने भारतीय कला को एक नवीन मोड़ और बल प्रदान किया।

अमृता शेरगिल–अमृता शेरगिल का जन्म १९१३ ई० में हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में हुआ। १९३४ ई० के अन्त में पेरिस की चित्रशालाओं तथा अकादमियों में चित्रकला का प्रशिक्षण प्राप्त कर अमृता भारत आई और शिमला में अपने माता-पिता के निवास स्थान में उन्होंने अपनी चित्रशाला स्थापित की। इस समय उनकी आयु लगभग इक्कीस वर्ष थी।

अमृता शेरगिल लाहौर के एक धनी सिक्ख, उमराव सिंह की पुत्री थी। उनकी माता हंगेरियन थी। आरम्भ से ही उन्हें चित्रकला में रुचि थी। अतः वे लगभग ग्यारह वर्ष की आयु में ही अपनी माता के साथ इटली गई और फ्लोरेंस की चित्रशाला में उन्होंने कला-दीक्षा ग्रहण की। यहीं पर यथार्थवादी पद्धति पर कला अभ्यास कर वह कुछ समय के लिए भारत आयीं परन्तु पुनः पेरिस चली गईं। पेरिस में उन्होंने पियर वैया तथा प्रोफेसर लुसियां सीमो की चित्रशालाओं में कला अभ्यास किया। सर्वप्रथम १९३० ई० में इनके चित्रों का प्रदर्शन ग्रांडसलों में आयोजित एक प्रदर्शनी में किया गया। इस प्रदर्शनी में 'धड़' (जिसमें एक नग्न महिला का पार्श्व छाया तथा प्रकाश में अद्भुत ढंग से चित्रित है) तथा 'युवतियाँ' नामक चित्र प्रदर्शित करके अमृता फ्रांस में प्रसिद्ध हो गईं। उनके ये चित्र 'माडल पद्धति' या 'ऐकेडेमिक शैली' पर आधारित थे।

१९३४ ई० में जब अमृता भारत आयीं तो उन्हें 'भारतीय लड़कियाँ' नामक चित्र पर नई दिल्ली की 'आल इंडिया फाईन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी' की प्रदर्शनी में स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। १९३६-३७ ई० के मध्य उन्होंने समस्त भारत का पर्यटन किया और सर्वप्रथम उन्होंने अजन्ता के विशाल और भव्य भित्तिचित्रों को देखा और भारतीय कला तथा जीवन से प्रभावित हुई। अमृता की कला ने यहीं से ही एक नवीन मोड़ लिया और उन्होंने अजन्ता तथा पहाड़ी चित्रों की सरल और सपाट कोमल रंगों की प्रतीकात्मक शक्ति को समझा। उन्होंने बसोहली शैली के पहाड़ी चित्रों की सरल योजना से विशेष प्रेरणा ली परन्तु उनके चित्र बड़ी कैनवास पर तैल रंगों में बने हैं।

अमृता की कला पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके चित्रों में भारतीय विषयों की नवीनता, तकनीकी नवलता, रेखा की लय, छन्द और अमिश्रित रंगों की सबल दार्ष्टिक चेतना है। सतत् प्रयोगों और चिंतन के पश्चात् अमृता ने अपनी प्रतिभापूर्ण कला से मार्ग प्रशस्त किया। उनके चित्रों में 'वधू का शृंगार', 'गणेश पूजा', 'ब्रावणकोर के बालक', 'स्त्रियाँ' तथा 'नील-वसना' उनकी विलक्षण प्रतिभा के ज्वलंत प्रमाण हैं। उनके अनेक चित्रों का संग्रह राष्ट्रीय नूतन कला वीर्था (गैलरी) नई दिल्ली में सुरक्षित है।

उनके चित्रों में रंग विधान की नवीनता, चमक और रंगों के अत्यधिक बल या विविध रंगतें भारतीय चित्रकला के लिए एक नवीन अध्याय हैं। उनके चित्रों में लाल तथा पीले रंगों का सशक्त और आत्म-अभिव्यंजक प्रयोग है। उन्होंने स्वयं कहा था-"रंगों को मैं पूजती हूँ।" उनके चित्रों में तूलिका स्पर्शों के प्रवाह के साथ-साथ धरातल को भरने के लिए बड़े-बड़े धरातल खण्डों का प्रयोग है, अमृता की महत्त्वाकांक्षा को यथार्थवाद का आग्रह अनन्त सीमा तक प्रभावित कर चुका था। वे कभी भी अपनी कला साधना में अतीत के स्वर्णिम स्वप्नों और कल्पना की उड़ान में नहीं भटकीं। आरम्भ में उन्होंने भारत की जर्जर ग्रामीण दुखी जनता को अंकित किया और उन्होंने अपने मौलिक रागात्मक तत्व को खोजा। अमृता ने अत्यन्त स्थूल और अत्यन्त दृश्यात्मक कला के प्रति प्रतिक्रिया दिखाकर अपनी कला का यह नवीन मार्ग चुना जो आज भी भारतीय कला अभ्यासी नवयुवकों के लिए प्रेरणाप्रद है। १९३८ ई० में वे पुनः बुडापेस्ट गयीं और वहीं उन्होंने डॉ० विक्टरईगान से विवाह किया और उसी वर्ष वे भारत लौट आयीं। परन्तु वे अपने वैवाहिक जीवन का सुख प्राप्त न कर सकीं और अट्ठाईस वर्ष की आयु पर १९४१ ई० में उनका देहान्त हो गया। उनके चित्रों में विषाद स्पष्ट दिखाई पड़ता है-'भिखमंगे', 'ग्रामीण' तथा अपने 'निजी चित्र' सभी में उनकी विषादमय भावना दिखाई पड़ती है।

यामिनीराय तथा अमृता शेरगिल के ठोस प्रयोगों से क्षयशील बंगाल स्कूल को गहरी ठेस पहुँची और अन्ततः यह स्कूल दम तोड़ता गया। इनकी नवीन जागृति और सतत्

प्रयासों ने भारतीय कला को नवजीवन प्रदान किया। अतः इन कलाकारों के प्रयासों को 'रिवाइवलिस्ट मूवमेंट' या 'पुनर्जीवन आंदोलन' के नाम से पुकारा जाता है।

गगनेन्द्रनाथ ठाकुर—इन प्रगतिशील कलाकारों के अतिरिक्त ठाकुर परिवार के ही एक अन्य सदस्य कवि रवीन्द्र के अग्रज गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने डॉ० स्टैला क्रैमरिश के प्रभाव में आकर १९२३ ई० के लगभग अनेक घनवादी प्रयोग आरम्भ कर दिये। उन्होंने घनवादी तथा स्वप्निल शैली आदि अनेक शैलियों में चित्र बनाये। इन चित्रों में काले फाख्तई तथा हल्के भूरे रंग का प्रयोग है। उनके चित्रों में पाश्चात्य प्रभाव अधिक है और समसामयिक यूरोपियन कला की छाप है। उनके चित्रों में 'स्वप्निल-देश' उनकी प्रतिभा का परिचायक है। प्रायः उनके चित्रों में हास्य और मौज की तरंग है।

नन्दलाल बसु—नन्दलाल बसु का जन्म ३ सितम्बर १८८३ ई० में मुंगेर जिले के हवेली खड़गपुर में हुआ था। कालेज की शिक्षा को स्वेच्छा से त्यागकर वे गवर्नमेंट आर्ट स्कूल में भर्ती हो गए। इस प्रकार वे आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आये और उनके शिष्यों में उनको सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। उनको १९१७ ई० में रवीन्द्रनाथ टैगोर के द्वारा स्थापित 'विचित्रा' नामक शिल्प-कलाकेन्द्र तथा 'ओरिएण्टल स्कूल ऑफ आर्ट्स' का प्राचार्य नियुक्त किया गया। उनकी कला प्रतिभा देखकर १९२२ ई० में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उनको शान्ति-निकेतन में कला विभाग के अध्यक्ष पद पर निमंत्रित कर लिया। नन्दलाल बसु ने अजन्ता, बाघ आदि गुफाओं के भित्तिचित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं, जिससे उनकी ख्याति फैल गई। १९२४ ई० में वे चीन गये जहाँ उन्होंने चीनी कला का अध्ययन किया। इसी समय उनको कांग्रेस अधिवेशन के पंडाल सजाने के लिए भी आमंत्रित किया गया। बसु ने विषय तथा तकनीकी की दृष्टि से भारतीय परम्परा की सीमा में बंधकर ही अपने प्रयोग किये। उनके प्रमुख चित्रों में 'शिव का विषपान', 'सती', 'दुर्गा', 'बुद्ध और मेघ', 'अर्जुन', 'युधिष्ठिर की स्वर्ग यात्रा', 'स्वप्न', 'वीणावादनी', 'गाँधी जी की डांडीयात्रा', 'संथाल-संथालिन', 'उमा की तपस्या', 'विरहणी', 'मेघ', 'उमा' आदि हैं। 'रूपावली' तथा 'शिल्पकला' उनकी कला विषयक पुस्तकें हैं। उन्होंने जीवन के अंतिम वर्षों में जिन कृतियों का निर्माण किया उनमें असाधारण रेखांकन दिखाई पड़ता है। उनके चित्रों में रेखा, चित्र की आकृति का प्राण बन गई है। आलोचकों ने उनकी कृतियों के विषय में इस प्रकार कहा है कि 'उनकी कृतियाँ कला के इतिहास में एक क्षण हैं, सतत प्रवाहमान निरन्तर गतिशील धारा नहीं है।' उनकी कृतियों में आधुनिक अभिव्यक्ति का सामना करने की क्षमता नहीं है। नन्दलाल बसु को राष्ट्रीय सम्मान 'पद्मविभूषण' से विभूषित किया गया। १९५३ ई० में उन्होंने शान्ति निकेतन के कला विभाग से निवृत्ति प्राप्त की किन्तु फिर भी चित्र बनाते रहे और १९६७ ई० में उनका निधन हो गया।

असित कुमार हाल्दर—स्व० असित कुमार हाल्दर से कला जगत पूर्णतया परिचित है। वे आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रमुख शिष्यों में से थे और स्व० नन्दलाल बसु, क्षितीन्द्र

मजूमदार और शैलेन्द्र दे के गुरु भाई थे। वे गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट-लखनऊ के प्राचार्य रहे। प्रयाग (इलाहाबाद) में नगरपालिका संग्रहालय में उनकी अनेक कृतियाँ सुरक्षित हैं। उन्होंने अजन्ता, बाघ तथा जोगीमारा के चित्रों की अनुकृतियाँ (१९१०-१९१४ ई० के बीच) तैयार की। 'उमरखय्याम' चित्रावली में शैली की मौलिकता है। उन्होंने भारतीय कला की परम्परा से हटकर चलने का प्रयास भी किया परन्तु परम्परा में रंगे कलाकार को सफलता न मिली। उन्होंने लकड़ी, रेशम, हार्डबोर्ड आदि पर बराबर प्रयोग किये। उनके चित्रों में आकृति की सरलता तथा रेखा का प्रवाह दर्शनीय है। उनके चित्रों में 'कुणाल', 'अकबर एक महान निर्माता' तथा 'रहस्य' आदि उल्लेखनीय हैं। हाल्दर बाबू कलाकार होने के अतिरिक्त एक बंगला गीतकार थे। मेघदूत का बंगला अनुवाद और उनके दृष्टान्तचित्र उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

देवी प्रसाद राय चौधरी—ये आचार्य अवनीन्द्रनाथ के योग्य शिष्य माने जाते हैं। चित्र की अपेक्षा मूर्ति के क्षेत्र में उनको अधिक सम्मान प्राप्त है। वे मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिंसिपिल के रूप में कार्य करते रहे। उन्होंने बंजारों, मछुआरों तथा पहाड़ी जीवन से सम्बन्धित अनेकों चित्र बनाये। उन्होंने पाश्चात्य कला के सम्मिश्रण से अपनी शैली को प्रशस्त किया। १९५८ ई० में उनको राष्ट्रीय उपाधि 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया।

मन्थन का युग, भविष्य की सीमाएँ और भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् की चित्रकला

यामिनीराय और अमृता शेरगिल की प्रगतिशील कृतियों ने भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में हलचल पैदा कर दी और अब हम एक मंथन और चिंतन के युग में पहुँच चुके हैं। इस युग की कला में रूढ़िवादी परम्परा या रसाभिव्यक्ति को वह स्थान प्राप्त नहीं है जो बौद्धिकता या तर्क को है। १९४० ई० तक भारत में नवीन विचारधारा स्वछन्द रूप से प्रवाहित होने लगी और अनेक चित्रकारों ने पाश्चात्य देशों की नवीन प्रवृत्तियों को लेकर यथार्थवादी, यथा-यथार्थवादी (स्वप्निल शैली) घनवादी, रचनावादी, प्रभाववादी, अभिव्यंजनावादी, सूक्ष्मवादी (अस्फुट) तथा प्रगतिवादी प्रवृत्ति को अपनी कृतियों में दर्शाया है। इन चित्रकारों ने इस बात को समझा कि यूरोप की ऐकेडमी शैली के अतिरिक्त अनेक चित्र शैलियाँ हैं जिनकी चित्रण पद्धति अधिक बलवती है और भारतीय चित्रकारों को अपने परम्परागत अतीत की कला से लिपटा रहना भ्रान्तिपूर्ण है। इन चित्रकारों ने वर्तमान में अपनी आस्था प्रदर्शित की और वर्तमान के आकर्षक रूप को पहचाना। कला वह सरिता है जो सदैव अपने मार्ग को बदलती रहती है और युग, जाति, देश रूपी तटों का प्रतिबिम्ब उस पर पड़ता रहता है। कला वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धि है और विकास के साथ सदैव ही परिवर्तनशील और विकासोन्मुख होती रहती है।

[illegible] ब्राकुये, सान्ने, स्वार्विस्की और पिकासो का पेरिस हमारे समय का प्रधान अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] केन्द्र है और कलाकारों की प्रेरणा का स्रोत है। भारतवर्ष के आधुनिक कलाकारों के

केन्द्र मुख्यतया कलकत्ता, बम्बई तथा दिल्ली हैं और इन कलाकारों को इन केन्द्रों के आधार पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है; यद्यपि यह सीमा भौगोलिक ही होगी और कलात्मक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इन नूतनवादी कलाकारों ने अपनी निजी और मौलिक सत्ता को कलासृजन में सर्वोपरि आधार माना है।

कलकत्ता ग्रुप—कलकत्ता के नवोदित प्रगतिशील कलाकारों ने अपने लिए 'कलकत्ता ग्रुप' के नाम से पुकारा है। इस दल के कलाकार युग की वैज्ञानिक उपलब्धि और प्रगति के प्रति जागरूक रहे। यह कलाकार अब भारत के अनेक भागों में फैल गए हैं। इस ग्रुप का आरम्भ १९४३ ई० में अकाल पीड़ित बंगाल में हुआ अतः इस दल के कलाकार मानववादी हैं। इन चित्रकारों में रथीन मैत्र, गोपाल घोष, सुनील माधव सेन, प्राणकृष्ण पाल, गोवर्धन आशु, कमलादास गुप्ता आदि चित्रकार हैं। गोवर्धनसेन, हेमंत मिश्रा तथा परितोष सेन का कलकत्ता ग्रुप के कलाकारों में प्रमुख नाम है। इन चित्रकारों ने प्रभाववादी शैली के आधार पर चित्र रचनाएँ की हैं या लोककला को इन चित्रकारों ने अपनी कला का आधार माना है। इन चित्रकारों ने लोककला के प्रतीकों और उसकी सरलता से बहुत कुछ ग्रहण किया है।

नूतनवादी प्रवृत्तियाँ—स्वतंत्रता के पश्चात् मनीषी डे, शैलोज मुखर्जी तथा सुधीर रंजन खास्तगीर ने परम्परागत कला का उद्धार करने के लिए प्रयत्न किये। उन्होंने लोककला से प्राचीन कला की विशेषताओं को ग्रहण करने का प्रयास किया और प्रभाववादी प्रवृत्तियों को अपनाया।

बम्बई तथा दिल्ली के प्रगतिशील कलाकार

कला के नवीन विकास में बम्बई तथा दिल्ली दल के कलाकारों का विशेष महत्त्व है। बम्बई दल के कलाकारों में अनेक स्वयं कुशल प्रयोगशील चित्रकार हैं और किसी नाम विशेष का बंधन स्वीकार नहीं करते। इन चित्रकारों में बेंद्रे, माली, रावल, छावड़ा, अलमेलकर, सातवलेकर और अरुणबोस हैं। इन चित्रकारों के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रभावशाली चित्रकार हैं जो अपने लिए 'प्रोग्रेसिव ग्रुप' के नाम से पुकारते हैं। इन चित्रकारों में हुसैन, फ्रांसिस सूजा, आरा, रजा, गोंडे, हेब्बर, अकबर पदमसी, लक्ष्मण पई आदि हैं। इन चित्रकारों ने अपनी कृतियों में व्यवस्था, आकार और रंग योजना को ही प्रधानता दी है और किसी पुरानी शैली या कला आंदोलन का समर्थन नहीं किया है।

भारत की राजधानी दिल्ली में भी जैसा स्वाभाविक है चित्रकारों का एक नूतनवादी दल विकसित हो चुका है। यह दल किसी वर्ग विशेष के अन्तर्गत नहीं आता। यहाँ के अग्रगण्य चित्रकारों में कुलकर्णी, भावेश सान्याल, कंवलकृष्ण, सतीश गुजराल, शांति दवे, सुल्तान अली, शैलोज मुखर्जी, बीरेन डे, दिनकर कौशिक, बद्री, के०सी० आर्यन, अविनाश चन्द्र, स्वामी नाथन, कृष्णा खन्ना हैं। नूतनवादी भारतीय चित्रकारों में गायताडे, बीरेन डे, जी०आर० संतोष, के०सी०